श्रीविश्वनाथ-ग्रन्थमालाका प्रथम पुष्प

श्रीमच्छङ्कराचार्य विरचित

स्तोत्र संग्रह

अनुवादक—

स्वामी महेश्वरानन्द

श्रीविश्वनाथ-ग्रन्थमालाका प्रथम पुष्प

श्रीमच्छङ्कराचार्य विरचित

स्तोत्र संग्रह

अनुवादक—

स्वामी महेश्वरानन्द

सम्पादक—'विश्वनाथ'

प्रथमवार

२०००

मूल्य

॥)

निवेदन

महेश्वरपरावतार आचार्य श्रीशङ्कर स्वामी-प्रणीत-स्तोत्र बहुत ही उत्तम एवं शिक्षाप्रद हैं, जो भक्ति, ज्ञान, एवं वैराग्यके प्रतिपादक, अत्यन्तरोचक, गम्भीर, शान्ति एवं सुखप्रद हैं। इन स्तोत्रोंके अवलम्वनसे अनेक मुमुक्षु भक्तजन, अनायास ही इस दुस्तर अपार संसार-समुद्रके पार होगये हैं, होरहे हैं और होते रहेंगे। स्तोत्र कल्याण-प्राप्तिमें बहुत ही सहायक हैं, इनसे संसारका बहुत ही कल्याण हुआ है, एवं हो रहा है। इसलिये अपने 'विश्वनाथ' प्रेमी जिज्ञासु-महानुभावोंके लिये मैंने पूज्यवर आचार्यप्रवर श्रीमहामण्डलेश्वरजी महाराजकी आज्ञानुसार इन स्तोत्रोंका हिन्दी भाषामें यथामति अनुवाद किया है। आशा है कि—गुणग्राही पाठकगण इनसे लाभ उठाकर मेरे परिश्रमको सफल करेंगे।

अधिकमास वदी ३
शुक्रवार सं० १९९२

—अनुवादक

भूमिका

भारतवर्षकी वर्तमान अवस्थाका यदि इस समय कुछ भी समाधान न किया गया तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि—निकट-भविष्यमें इस असाध्य-व्याधिका कुछ भी प्रतिकार न हो सकेगा। धर्म, जाति और देशका निर्वाणोन्मुख दीपक सदाकेलिये अन्धकार के गर्भमें विलीन हो जायगा।

भारतीय संस्कृति और अपने सिद्धान्तोंकी रक्षा करना; धर्म, देश एवं जातिकी रक्षा करना है। भारतीय-शास्त्रोंको सुरक्षित रखने केलिये विधिपूर्वक उनका पठन-पाठन और उनके सिद्धान्तोंका प्रचार करना शान्तिके मूलतत्त्वोंका प्रचार करना है।

प्रस्तुत-पुस्तकमें आद्य जगद्गुरु श्रीस्वामी शङ्कराचार्य विरचित-स्तोत्रोंका संग्रह और संक्षेपमें उनके जीवन-चरित्र पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

बौद्ध-कालीन भारतवर्षके इतिहासमें, वैदिक-सभ्यताके जन्म-दाता; वेद, दर्शन, उपनिषद् और पुराण-स्मृति आदि ग्रन्थोंके अस्ति-त्वकी रक्षा करनेवाले भगवान् शङ्कराचार्य ही थे।

भगवान् शङ्कराचार्यने उस समय अवतार लिया था जब भारत वर्षका कोना-कोना पारस्परिक-धर्मविद्वेषकी धधकती हुई प्रचण्ड-ज्वाला से वैदिक-संस्कृतिको भस्म करना चाहती थी।

उस धर्मक्रान्तिके युगमें परमपदास्पद् भगवान् शङ्कराचार्यने वेदान्त दर्शन-दशोपनिषत् और भगवद्गीता इन तीनों ग्रन्थों पर अपने भाष्य-निर्माण किये।

जिन्हें आज भी 'प्रस्थानत्रयी' के नामसे सम्बोधित किया जाता है। प्रस्थानत्रयीमें प्रवृत्ति और निवृत्ति-मार्गोंका तात्त्विक-विवेचन किया गया है।

प्रवृत्ति और निवृत्ति

शास्त्रकारोंने प्रवृत्ति और निवृत्तिको ही 'जीवन' कहा है। प्रवृत्ति परायणता किसी कार्य-निर्वाहकी ओर लेजाना चाहती है और निवृत्तिका विषय है—निन्दित कार्योंसे छुटकारापानेके लिये विशुद्ध-आत्म-चैतन्यकी प्राप्ति। यदि इन दोनों शक्तियोंका तात्त्विक-विवेचन किया जाय तो यही कहना पड़ेगा कि—प्रवृत्ति और निवृत्ति शरीरके एकीकरणका नाम है। शरीरके अभावमें न प्रवृत्ति है और न निवृत्ति। बन्धनके पश्चात् ही मुक्त होनेकी चिन्ता सताती है। जिसे बन्धनोंने घेरा ही नहीं, वह क्या मुक्त होगा? वह तो स्वयं मुक्त है।

वेदान्त-दर्शन भगवान् कृष्णद्वैपायन (श्रीव्यासदेव) प्रणीत है। इन्हीं वेदान्त-सूत्रोंको ब्रह्मसूत्र अथवा शारीरिक-सूत्र कहते हैं।

ब्रह्मविद्या-सम्बन्धि **उपनिषद्** ग्रन्थ भिन्न-भिन्न ऋषियोंद्वारा प्रकट हुए थे। उपनिषद् ग्रन्थोंमें अनेक मार्गोंसे मुक्ति-मन्दिरमें जाने का संकेत किया है।

तीसरा ग्रन्थ है भगवद्गीता । इस गीताका गुण-गान उस समय हुआ था जब अर्जुन विरक्त बनकर युद्धके मैदानसे भागना चाहता था ।

उपरोक्त तीनों ग्रन्थोंके भाष्य ही भगवान् शङ्कराचार्यकी विवेचनात्मक कृति हैं । इन ग्रन्थोंमें संसारकी असारता और ब्रह्म-विद्याका निरूपण किया है ।

इसके अतिरिक्त भगवान् शङ्कराचार्यने संसारकी समस्त बाधाओंसे मुक्त होनेकेलिये अनेक स्तोत्रोंका निर्माण किया ।

प्रातःस्मरण स्तोत्रमें केवल स्तुति ही प्रधान हो यह नहीं कहा जासकता, क्योंकि इन स्तोत्रोंमें भगवान् शङ्कराचार्यकी उन अनुभूतियों का संक्षिप्त वर्णन है जिनके कारण उन्होंने बौद्धों पर विजय प्राप्त की थी । कौनसी विशेषता बौद्धोंमें न थी ? जिनके कारण उन्हें हार माननी पड़ी । पुस्तकके २५ वें पृष्ठसे लेकर १२१ पृष्ठ तक संसारके बाहरी रूपरङ्गकी खूब समालोचना की है ।

जगद्गुरुके हार्दिकभाव अबतक संस्कृत भाषा-भाषियोंके लिये सुलभ थे, परन्तु अब हिन्दी-भाषा जाननेवाले प्रेमी महानुभाव भी प्रस्तुत पुस्तकका सबसे सस्ता संस्करण पढ़कर भगवान्के धार्मिक-विचारोंका रसास्वाद कर सकेंगे ।

—पं० रामेश्वरप्रसाद पाण्डेय,
साहित्याचार्य ।

विश्वनाथ-ग्रन्थमाला
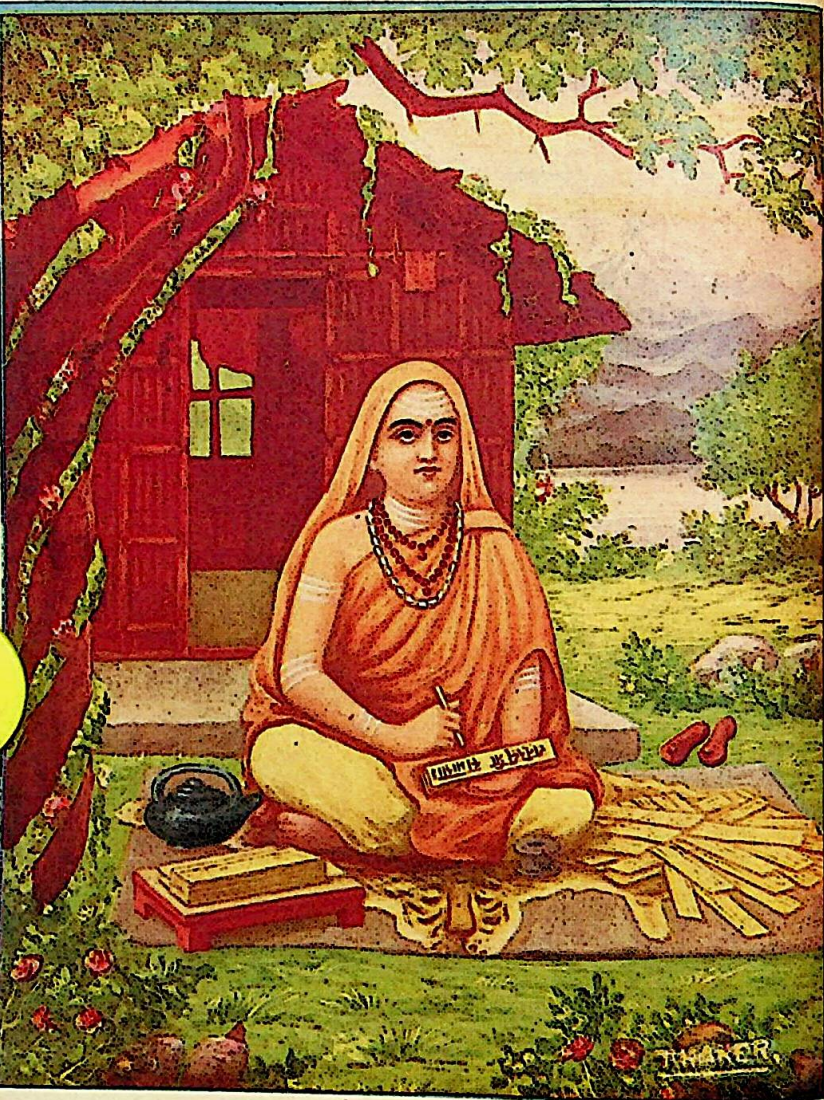
प्रस्थानत्रयीभाष्यकार आद्य जगद्गुरु आचार्य्यप्रवर
श्रीमच्छङ्करभगवत्पाद

K. V. P.

आद्यजगद्गुरु भगवान् श्रीशङ्कराचार्य

भगवत्पादपादाब्ज-द्वन्द्वं द्वन्द्वनिवर्हणम् ।
सुरेश्वरादिसद्भृङ्ग-रवलम्बितमाभजे ॥

जगद्गुरु भगवान् आचार्य श्रीशङ्करस्वामीजीका प्रातःस्मरणीय नाम, प्रकाण्डपाण्डित्य, योगसिद्धि, ब्रह्मनिष्ठा एवं महनीय विपुल-कीर्ति, अद्भुतचरित्र आदि आज भी किसीसे छिपा नहीं है । आप साक्षात् देवाधिदेव कैलासवासी भगवान् श्रीशङ्करके पूर्णावतार हैं, समस्त जगत्के गुरु एवं दशनाम संन्यासियोंके प्रधान आचार्य हैं, आपके आदर्शजीवनकी अलौकिकताको देखकर इस बातमें लेश भी सन्देह नहीं रह सकता ।

वैदिक-धर्मकी नौका बौद्ध-कापालिक आदि नास्तिक-सागरमें डूबती हुई देखकर कैलासवासी भगवान् महादेवका अचल सिंहासन भी डोल उठा । तत्काल ही अनेक आक्रमणोंके अन्धकारमें विद्युत्की तरह देदीप्यमान होकर भगवान् शङ्कर, दक्षिण देशके सुरम्य केरल प्रदेशके अन्तर्गत कालटी नामक ग्राममें वेदशास्त्र-पारङ्गत, शिवभक्त, धर्मनिष्ठ 'शिवगुरु' नामक ब्राह्मणके गृहमें 'सती देवी' के गर्भसे अवतीर्ण हुए ।

आप एक वर्षकी आयुमें अपनी मातृ-भाषा संस्कृतमें बातचीत करने लगे थे, दो वर्षकी आयुमें माताकी शिक्षासे समग्र पुराण एवं महाभारत आदि इतिहासोंको कण्ठस्थ करने लगे थे, एवं पांच वर्षकी आयुमें उपनयन धारणकर गुरुके पास वेदादि शास्त्रोंको पढ़नेकेलिये गये थे । छात्रावस्थामें ही आपने एक दरिद्री ब्राह्मणीके गृहको सुवर्णके आमलोंसे भर दिया था, जिसने भिक्षाके लिये आपको अपना सर्वस्व एक आमलाको बड़ी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक दियाथा, जिसका यह प्रत्यक्ष फल था ।

आप दो वर्षमें ही समस्त वेदशास्त्रोंका अध्ययनकर प्रकाण्ड पण्डित हो गयेथे, और अनेक छात्रोंको विद्या पढ़ातेथे। केरल देशके राजाने आपकी महनीय-कीर्ति सुनकर मन्त्रीके द्वारा बहुत धन भेंट कर आपको अपनी सभामें बुलाना चाहा, परन्तु जब आपने सब धन वापिस करदिया, और वहाँ नहीं गये, तब राजा स्वयं आपके समीप आकर शिष्य बन गयाथा।

आपने आठ वर्षकी आयुमें ही संन्यास लेनेका विचार किया, और मातासे आज्ञा माँगी, परन्तु पुत्र-वत्सला माताने आज्ञा नहीं दी। आखिर आप एक दिन माताके साथ समीपकी नदीमें स्नान करने गये, और वहाँ आपने अपनी अद्भुत योगशक्तिसे माताको विचित्र दृश्य दिखाया, कि—एक ग्राह (मकर) आपके पैरको पकड़कर गहरे पानीमें खींच रहा है, और आप पानीमें डूबने लगे हैं। उस समय आपने मातासे कहा कि—हे माता ! यदि तुम मुझे संन्यासी होनेकी आज्ञा देदो तो इस भयङ्कर ग्राहसे मुक्त होकर मैं बच सकता हूँ। जब पुत्र-प्राणा आर्त माताने अपने प्यारे इकलौते पुत्रकी आकस्मिक मृत्युके भयसे तत्काल ही संन्यासकी आज्ञा दे दी, तब आपने अपनी लीला सम्वरण करली। तटके ऊपर आकर आपने माताको उपदेश दिया, वह यह है—

प्रबलानिलवेगवेल्लित-ध्वजचीनांशुककोटिचञ्चले।
अपि मूढमतिः कलेवरे, कुरुते कः स्थिरबुद्धिमम्बिके॥
कति नाम सुता न लालिताः, कति वा नेह वधूरभुञ्जि हि।
क्वनु ते क च ताः क वा वयं, भवसङ्गः खलु पान्थसङ्गमः॥
भ्रमतां भववर्त्मनि भ्रमा, न्नहि किञ्चित्सुखमम्ब! लक्षये।
तदवाप्य चतुर्थमाश्रमं, प्रयतिष्ये भवबन्धमुक्तये॥

इस प्रकार आपने माताको उपदेश देकर, एवं उसके योगक्षेम का प्रबन्धकर, उनसे बिदाली, और नर्मदातटनिवासी श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ

श्रीगोविन्दभगवत्पादाचार्यजीके समीप जाकर संन्यासदीक्षा लेली, गुरुदेव ने आपका नाम श्रीशङ्करभगवत्पाद रक्खा।

कुछ समय आप श्रीगुरुदेवकी सेवामें रहकर एवं गुरुसे बतलाई हुई योगसाधनाको कर, पूर्ण सिद्धयोगी होगये। एक दिन जब गुरुदेव समाधिमें थे, तब बड़े जोरोंकी वर्षा होनेके कारण नर्मदामें पानीकी महती बाढ़ आयी। नर्मदातटके लोगोंका गृह तथा आश्रम भी पानीसे घिर गया, लोग त्राहि-त्राहि पुकारने लगे, उस समय दयालु शङ्कर स्वामीने लोगोंके दुःख मिटानेके लिये छोटेसे कमण्डलुमें सारे पानीको भर लिया। जब गुरुदेव समाधिसे उठे, तब आपका दिव्य-प्रभाव देखकर बड़े प्रसन्न हुए। गुरुदवने योगदृष्टिसे गौरकर देखा कि—'अहो साक्षात् भगवान् महादेव ही अवतार लेकर मेरे शिष्य बने हैं'। गुरुदेव भगवान् श्रीशङ्करकी बार-बार प्रशंसा कर अपनेको धन्य समझने लगे।

गुरुदेवकी आज्ञासे आपने ब्रह्मसूत्र (वेदान्तदर्शन) के ऊपर अद्वैत शारीरिक-भाष्यकी रचना की, पश्चात् आप अपने अवतार कार्य करनेके लिये विश्वनाथपुरी श्रीकाशीजी पधारे, और वहाँ वैदिकधर्मके विरोधियोंको हराकर वैदिक अद्वैत-सिद्धान्तका प्रचुर-प्रचार किया, जो आज भी वह सिद्धान्त श्रीकाशीजीमें अक्षुण्णरूपसे विद्यमान है। कहते हैं, साक्षात् विश्वेश्वर भगवान् विश्वनाथ चाण्डाल वेषमें आपके सामने प्रकट हुए, और आपसे वादविवाद किय। चाण्डालके अद्भुत शास्त्रार्थसे चकित होकर आपने योगदृष्टिसे साक्षात् भगवान् विश्वनाथको चाण्डालके रूपमें सामने देख वन्दना की। चूँकि काशीमें विशेष करके भगवान् विश्वनाथ साक्षात् मूर्तिमान होकर विराजते हैं। भगवान् विश्वनाथने अपने असली स्वरूपका दर्शन देकर समस्त भारतवर्षमें वैदिक-धर्मके प्रचारकी आज्ञा दी।

इसी तरह विष्णुके अवतार भगवान् वेदव्यासने आपके सामने ब्राह्मणके रूपमें प्रकट होकर आपसे शास्त्रार्थ किया, पश्चात् जब आपने योगदृष्टिसे व्यासदेवको पहिचानकर उनकी स्तुति की और स्वरचित ब्रह्मसूत्र-भाष्यको दिखाया, तब व्यासदेवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए, और कहने लगे कि—साक्षात् शङ्कर महादेवके बिना मेरे गूढ़ सूत्रोंके वास्तविक आशयको और कोई भी नहीं जान सकता है; क्योंकि ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर ये तीनों देवता समान कोटिके हैं, उन्हींको समान ऐश्वर्य, समान-शक्ति एवं समान-ज्ञान हैं, अतः इस प्रकारका यथार्थ भाष्य बनानेवाले आप साक्षात् महादेवके अवतार श्रीशङ्कर हैं। पश्चात् व्यासदेवजीने इस अद्वैतभाष्यका प्रचार करनेकी आज्ञा दी, और आपकी आयु १६ वर्षसे ३२ वर्ष पर्यन्त होनेका वरदान देकर अन्तर्ध्यान होगए।

तत्पश्चात् आपने तमाम भारतवर्षके कोने-कोनेमें भ्रमणकर नास्तिक मतोंका खण्डनकर वैदिकअद्वैत सिद्धान्तका प्रचार किया और चारों कोने में चार विभिन्न मठ स्थापन किये, एवं काशी-काञ्ची आदि स्थलोंमें भी मठोंकी स्थापना की।

कुछ समय आप बदरिकाश्रमके ज्योतिर्मठमें रहे, वहाँ आपने परम-विरक्त शुकदेव मुनिके शिष्य, अपने गुरुदेवके गुरु भगवान् गौड़पादाचार्यजीके दर्शन किये। उन्होंने आपको माण्डूक्योपनिषद्के ऊपर स्वरचित कारिकाएँ दीं। उनकी आज्ञासे आपने ईश,केन आदि दश उपनिषद्, गौड़पादकारिका तथा श्रीमद्भगवद्गीता पर अपूर्व अद्वैतभाष्य लिखे। तथा विष्णुसहस्रनामभाष्य,सनत्सुजातीयभाष्य आदि भाष्य एवं उपदेशसाहस्री विवेक-चूड़ामणि आदि अन्य ग्रन्थ तथा कितने ही रोचक स्तोत्र रचे। जो आज भी सूर्यकी तरह विद्यमान हैं, जिनसे मनुष्य जातिका महान् कल्याण होरहा है।

आपके पास कई सैकड़ों, संन्यासी, ब्रह्मचारी आदि रहकर उन अद्वै-

तभाष्योंका सतत अध्ययन करते थे। उस समय आपकी शिष्यमण्डलीमें एक सनन्दन नामका प्रधान शिष्य था, जिसको आपने अपने समग्र भाष्यों को तीन बार पढ़ाया था। एक दिन आपने गङ्गापारमें रहनेवाले उस सनन्दनको शीघ्र ही अपने पास आनेके लिये पुकार की। उस समय गुरुके पास आनेके लिये नौका आदि कुछ भी साधन नहीं था, तब अनन्य गुरुभक्त सनन्दन अपने मनमें इस प्रकार विचार करने लगा—

संतारिकाऽनवधिसंसृतिसागरस्य,
किं तारयेन्न सरितं गुरुपादभक्तिः।

ऐसा दृढ़ निश्चयकर तत्काल ही वह शिष्य गङ्गाजीमें कूद पड़ा, भगवती गङ्गा जी भी इस शिष्यकी विशुद्ध गुरुभक्ति एवं अपूर्व साहस देख कर प्रसन्न हुई, और उसके प्रत्येक पादके नीचे स्वर्णमय कमल लगा दिये, जिन्होंके ऊपर वह अपने पादोंको रखकर निर्विघ्न गुरुदेवके पास ज पहुँचा। गुरुदेव भगवान् शङ्करस्वामी इस शिष्यकी अलौकिक श्रद्धाभक्ति को देखकर अति प्रसन्न हुए और तबसे उसका 'पद्मपाद' ऐसा अन्वर्थ नाम रक्खा, क्योंकि वह गङ्गाजीसे निर्मित कमलोंमें अपने पादोंको रख कर इस पार आया था। वही शिष्य आगे शारदापीठके प्रधान पद पर आरूढ़ होकर एवं 'पञ्चपादिका' आदि ग्रन्थोंको रचकर 'पद्मपादाचार्य' नामसे प्रसिद्ध हुआ था।

तत्पश्चात् आपने पुनः भारतमें भ्रमण किया, बचेहुए अपने विरोधी द्वैतवादियोंको शास्त्रार्थमें हराया और अपने केवलाद्वैत सिद्धान्त एवं भगवद्भक्तिका प्रचुर प्रचार किया। ब्रह्मविज्ञानके साथ-साथ आपकी भगवद्भक्ति एवं योगसिद्धि भी अपूर्व थी, इसमें प्रमाण आपका आदर्श-जीवन एवं आपके ग्रन्थ दे रहे हैं।

एक दिन आप भिक्षाके लिये एक नगरमें जा रहे थे, वहाँ एक बूढ़ा ब्राह्मण व्याकरणकी 'डुकृञ् करणे' धातु कण्ठस्थ कररहा था।

इसकी ऐसी दशा देखकर आपने उसी समय उसको उपदेश देना प्रारम्भ किया। वह यह है—

प्राप्ते संन्निहिते मरणे, नहि नहि रक्षति डुकृञ् करणे।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढमते!॥

आपकी अलौकिक विद्वत्ताको देखकर बड़े-बड़े नामी पण्डितोंके भी छक्के छूट जाते थे, आपके सामने जबान खोलनेके लिये कुछ शहूर ही नहीं रहता था उस समय एक नर्मदातट निवासी मण्डनमिश्र नामका बड़ा-भारी विद्वान् था। वह पूर्वमीमाँसा शास्त्रका पूर्ण विद्वान् व अनुयायी था। जिसके बनाये हुये 'विधिविवेक' आदि ग्रन्थरत्न आज भी मौजूद हैं। उसको अपने पाण्डित्यका पूर्ण अभिमान था, वह समझता था कि–मेरे समान पृथ्वीमें और कोई विद्वान नहीं है।

इसके वृत्तान्तको सुनकर शास्त्रार्थकेशरी आचार्य शङ्करस्वामी फौरन ही अपनी योगसिद्धिके प्रभावने आकाशमार्गसे उसके बन्द गृहके भीतर जा पहुँचे। वहाँ वह श्राद्ध करता था। शङ्करस्वामीने उससे शास्त्रार्थकी भिक्षा माँगी। वह भी ऐसा चाहता ही था। 'जो पराजित हो वह विजेताका आश्रमपरिवर्तन कर शिष्य बन जाय' ऐसी आपसमें दृढ़ प्रतिज्ञाकर दोनोंका शास्त्रार्थ होना निश्चित होगया, और दोनोंकी सम्मतिसे उसकी धर्मपत्नी प्रसिद्ध विदुषी सरस्वतीको मध्यस्थ पदपर नियुक्त किया गया। जो साक्षात् सरस्वतीका अवतार थी। दोनोंके कण्ठमें पुष्पमाला पहिनाकर सरस्वती कहने लगी कि–जो हार जायगा उसके कण्ठकी माला सूख जायगी, शास्त्रार्थ प्रारम्भ होगया। मण्डनमिश्र द्वैतवादको अनेक प्रमाण एवं युक्तियोंसे सिद्ध करता था, और श्रीशङ्करस्वामी उन्हींका खण्डनकर अद्वैतवादका प्रबल-अकाट्य-युक्ति-तर्क प्रमाणादिसे समर्थन करते थे। आखिर, सात रोजके बाद मण्डनमिश्रके कण्ठकी माला सूख गयी। मण्डनमिश्रने अपनी हार स्वीकार ली, और द्वैतवादको अवैदिक निश्चय

किया। अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वह श्रीशङ्करस्वामीका संन्यासी शिष्य बन गया। आपने उनका संन्यासाश्रमका 'सुरेश्वर' ऐसा नाम रक्खा। जिनने गुरुदेवकी आज्ञासे बृहदारण्यकोपनिषत् आदिके अद्वैत शाङ्कर-भाष्योंके ऊपर विद्वत्तापूर्ण बृहत्-वार्तिक ग्रन्थ लिखें, तथा नैष्कर्म्यसिद्धि आदि अनेक अद्वैत-वेदान्तके स्वतन्त्र ग्रन्थ भी रचे। जिन्होंका आज भी सर्वत्र प्रचार है। वे ही पश्चात् शृङ्गेरी पीठके प्रधान पदपर आरुढ होकर 'सुरेश्वराचार्य्य''वार्तिककार''विश्वरूपभारती' आदि नामोंसे प्रसिद्ध हुये।

उस समय सरस्वतीके साथभी आपका शास्त्रार्थ हुआ, परकायप्रवेश आदि योगसिद्धियोंके प्रभावसे आपने सरस्वतीको भी परास्त किया।

इसके बाद आपके पास एक 'गिरि' नामका साधन चतुष्टय सम्पन्न शिष्य आया। जिसको संन्यासदीक्षाके समयमें आपसे महावाक्यका उप-देश सुनते ही समाधि लग गयी थी। वह आपकी सेवाके समयमें समाधिसे जाग्रत होता था एवं अन्य समयमें प्रायः समाधिस्थ ही रहता था। यद्यपि वह प्रथम कुछ विशेष लिखा पढ़ा न था,तथापि आपके दिव्य कृपा-कटाक्ष से ही सकल वेद-शास्त्रोंका पारङ्गत धुरन्धर विद्वान् हो गया था। जिनके बनाये हुए तोटक आदि ग्रन्थ आज भी विद्यमान हैं। पश्चात् वही ज्योति-र्पीठके प्रधान पद-पर आरूढ होकर 'तोटकाचार्य्य' 'आनन्द-गिरि' 'सिद्धगुरु' आदि नामोंसे प्रसिद्ध हुये।

भारतकी इस यात्रामें एक दिन आप एक जगह समाधिमें बैठे थे, उस समय आपको योगदृष्टिसे यह भान हुआ कि—अपनी वृद्धा-माताका मृत्यु समय समीप आगया है, माता मुझे याद कर रही हैं, अतः उनके समीप जाना परम आवश्यक है, ऐसा विचार-कर आप अपनी मण्डलीका कार्य-भार पद्मपादाचार्य्यजीको सुपुर्द कर शीघ्र ही आकाश मार्गसे माताके पास जा पहुँचे। माताको नमस्कारादि करनेके बाद माताकी इच्छानुसार अपने श्यामसुन्दर विष्णु भगवान्का साक्षात्कार कराकर माताजीको सदा

के लिये वैकुण्ठ-धाममें भेज दिया। और आप अपनी मण्डलीमें आगये।

उस समय आपके समीप एक जड़ बालकको लेकर एक ब्राह्मण आया। नमस्कारादि करके उसने कहाकि—भगवन्! यह बालक कुछ भी बोलता नहीं है, एवं बालकोचित चेष्टा भी नहीं करता है, जड़वत् रहता है, यह ऐसा क्यों है? बालककी मौन प्रसन्न योगमयी मुख-मुद्राको देखकर शङ्करस्वामीने उसको सम्बोधन करके पूछा कि—

कस्त्वं शिशो! कस्य कुतोऽसि गन्ता,
किं नाम ते त्वं कुत आगतोऽसि।
एतन्मयोक्तं वद चार्भक! त्वं,
मत्प्रीतये प्रीतिविवर्धनोऽसि॥

नाहं मनुष्यो न च देवयक्षौ न ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः।
न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थो भिक्षुर्न चाहं निजबोधरूपः॥

इसी तरह १४ श्लोकोंसे इस बालकने अपने शुद्ध स्वरूपका परिचय दिया। वे श्लोक 'हस्तामलकस्तोत्र' के नामसे आज भी प्रसिद्ध हैं, इस अद्भुत चमत्कारको देखकर उस ब्राह्मणने इस बालकको आपके चरणों में समर्पण किया। आपने इस बालकको पूर्ण सिद्धयोगी जानकर संन्यास-दीक्षासे विभूषित कर 'हस्तामलक' इस अन्वर्थ नामसे प्रसिद्ध किया, क्योंकि उसको हथेलीमें रक्खे हुए आमलेकी तरह आत्मतत्त्वका साक्षात्कार था। वही पश्चात् गोवर्धन-पीठके प्रधान पदपर आरूढ़ होकर 'हस्तामलकाचार्य्य' नामसे विख्यात हुये।

एक समय आपके पास एक तान्त्रिक कापालिक आया। एकान्तमें उसने आपसे याचना की हे भगवन्! हे स्वामिन्! मेरी एक प्रार्थना आपसे पूर्ण होनी चाहिये। आप वाञ्छितफल-प्रद कल्पवृक्ष हैं। आपके समीप आकर कोई विफल मनोरथ हो नहीं सकता। आप परमोदार महाविरक्त एवं जगद्गुरु हैं, आपका परोपकारमय जीवन है, अतः मुझे पूर्ण विश्वास है कि—मेरी अभिलाषा आपसे अवश्य ही पूर्ण होगी।

जब श्रीशङ्करस्वामीने कहा कि–कहिये, आपकी क्या अभिलाषा है ? तब कापालिक कहने लगा—कृपानिधान ! मै इस जीवित देहसे महाकैलाश जाना चाहता हूँ । इसलिए एक याग किया है । वह याग तब सिद्ध हो सकता है कि–जब एक चक्रवर्ती राजाके शिरकी बलि दीजाय, या पूर्ण-सिद्ध योगीश्वर महापुरुषके शिरकी बलि दीजाय । हे करुणासागर ! मुझ दीनके लिये चक्रवर्ती राजाका शिर मिलना सर्वथा असम्भव है । हाँ, यह मुझे पूर्ण विश्वास है कि–आप जैसे पूर्ण योगीश्वर ही मेरी इस कठोर प्रार्थनाको स्वीकार कर मुझे सफल-मनोरथ कर सकते हैं । क्योंकि आप जैसे महापुरुषकी दृष्टिमें यह देहादि प्रपञ्च तुच्छ एव मिथ्या है । मैंने सुना है कि–आपके सदुपदेश भी ऐसे ही होते हैं, मैंने आपके समान और कोई पूर्ण सिद्ध-योगीश्वर न सुना है एवं न तो देखा है, अत. मेरी इस अभिलाषाको आप अवश्य पूर्ण करेंगे ऐसी आशा है । इतना कहकर कापालिक चुप होगया ।

कापालिककी इस दीनतामयी प्रार्थनासे याचक कल्पतरु दयालु भगवान् श्रीशङ्करस्वामीजीका कोमल हृदय द्रवीभूत होगया। सच कहा है—

वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि, कोहि विज्ञातुमीश्वरः ॥

आपने तत्काल ही परम-निर्भयताके साथ कह दिया कि–अच्छा, तुम कल प्रातःकाल तीन बजे ठीक यहाँ चुप-चाप आ जाना, और मेरे इस शरीरके शिरको काटकर ले जाना । ख्याल रहे कि–मेरे इस शिष्य मण्डलमें पता न लगजाय, नहीं तो वे लोग विघ्न करेंगे ।

आपके इन परमोदार वचनोंको सुनकर कापालिककी प्रसन्नताका पार नहीं रहा, और वह दूसरे दिन ठीक निर्दिष्ट समयमें आपके पास आ पहुँचा। उस समय आपने सिद्धासन लगाकर निखिल इन्द्रिय तथा प्राणोंको रोककर निर्विकल्प समाधि लगा लिया और वह कापालिक

शस्त्रको उठा कर आपके शरीरका शिर काटनेके लिये उद्यत हुआ। उस समय पद्मपादाचार्य्यजी नृसिंह भगवान्‌का ध्यान कर रहे थे, ध्यानके समय उनको ऐसा भान हुआ कि—मेरे गुरुदेवके शिरको एक कापालिक काट रहा है, शीघ्र ही वे गुरुदेवके समीप आ पहुँचे, और वहाँ वैसाही दृश्य देखा। तत्काल ही पद्मपादाचार्य्यजीने **'लक्ष्मी-नृसिंह मम देहि करावलम्बम्'** इत्यादि १२ श्लोकोंसे नृसिंह भगवान् की स्तुति की। वह स्तुति 'लक्ष्मीनृसिंहस्तोत्र' के नामसे आज भी प्रसिद्ध है, इस स्तोत्रका अनुष्ठान महान्‌से भी महान् सङ्कटका नाशक है। स्तुति के प्रभावसे भगवान् नृसिंह फौरन् प्रकट होगये, और दुष्ट कापालिकका काम तमाम (खतम) कर दिया, पश्चात् पद्मपादाचार्य्यजीने समाधि खोल-कर आपको जाग्रत किया। यह वृत्तान्त सुनकर आप 'हरेरिच्छा-बलीयसी' ऐसा कहकर चुप होगये।

आप अपनी मण्डली सहित बदरिकाश्रम गये। शिष्यमण्डलीको आपने अपना अन्तिम प्रस्थानका समय प्रथमसे ही सूचित कर दिया था, जिससे भारतके तमाम भावुक संन्यासी, ब्रह्मचारी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, राजा, महाराजा, सेठ, साहूकार आदि इधर-उधरसे आपके अन्तिम दर्शन करने के लिये वहाँ आगये थे। सबकी हार्दिक अन्तिम सदुपदेशकी जिज्ञासा व प्रार्थना देखकर आपने **'वेदोनित्यमधीयताम्'** आदि पाँच श्लोकोंसे उपदेश कर सबके सामने अन्तर्ध्यान होगये, जो सदुपदेश आज भी 'उपदेश-पञ्चक' के नामसे भारतमें सर्वत्र प्रसिद्ध है।

यद्यपि श्रीशङ्करस्वामीजीके अवतार समयमें बहुत मत-भेद है, परन्तु मठोंकी परम्परा व शिला-लेखसे यह निश्चित होता है कि—श्रीशङ्करस्वामीजीका प्रादुर्भावकाल युधिष्ठिर सम्वत् २६३१ वैशाख शुक्ल ५ माना जाता है, जिसको अब २४०४ वर्ष होजाते हैं।

—महेश्वरानन्द

विषय-सूची

शुद्धिपत्र

अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति
मन	मज	२	४
सनातनदं	सनातनपदं	२	१५
प्रात	प्रातः	३	७
वे	वै	३	१०
दती	देती	५	१३
फल	फल हरिभक्ति है,	९	१६
परायणत्ता	परायणता	१०	२
कर्मलोमें	कमलोमें	१०	१२
ऐसे	ऐसी	११	११
यस्यव	यस्यैव	१४	१५
वृत्तिभवा	वृत्तिर्भवा	१४	१७
ममन	मनन	१९	२
रवताररवताररवता	रवतारैरवतारवता	२६	१
पशुशोंके	पशुओंके	२७	६
महेशानं !	महेशान !	२८	१३
वर्ष	वेष	२९	१६
भी भी	भी	३०	४
श्रतिके	श्रुतिके	३०	१६

अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति
परमात्मा-विद्या	परमात्म-विद्या	३३	१२
तलवारस उपसंसार	तलवारसे उस संसार	३६	५
परमानन्दनम्	परमानन्दम्	४४	१३
रोगादि	रागादि	४५	१५
परमान्दम्	परमानन्दम्	४८	४
त्रुति	त्रुटि	४८	१०
कपल	कमल	४९	४
आनी	यानी	४९	१२
प्राप्नन	प्राप्तेन	५३	२
वाक्य	वाक्यं	५३	३
भुत्वा	भूत्वा	६०	१
महाकलास	महाकैलास	६०	७
स्वरुपमें	स्वरूपमें	६०	१०
उभाके	उमाके	६६	३
अधिष्ठान्त	अधिष्ठाना	६८	१७
ज्ञयविहीनो	ज्ञेयविहीनो	७०	१०
स्रोता	श्रोता	७६	५
जीवतयत्थेम्	जीवतयेत्थम्	७६	१६
चिच्छक्त्याधिरूढः	चिच्छक्त्यधिरूढः	८०	७
धटपट	घटपट	८१	२
भुक्त्के	भङ्क्ते	८३	१४

अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति
शब्दादिके	शब्दादि	८३	१७
द्वन्द्वकत्वं	द्वन्द्वैकत्वं	८५	८
समुदायमैं	समुदायमें	८९	६
चैतनन्यांशे	चैतन्यांशे	९०	३
सद्बुधि	सद्बुद्धि	१३८	४
प्राप्त	प्रसन्न	१३८	५
मनथं	मनर्थं	१३८	७
मिथ्था	मिथ्या	१३९	३
विनिर्मुक्तौ	विनिर्भुक्तो	१४७	१४
जाग्रतर	जाग्रत	१४७	१८
मातरि	मायेति	१४८	२
उस	उसे	१५३	९
स्वप्रकाशप्रकाश	प्रकाश	१५८	१३
पूर्वमें ही	पूर्वमें	१६०	१

❀ ॐ ❀

प्रातःस्मरण स्तोत्र

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वम् ,
सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम् ।
यत्स्वप्नजागर सुषुप्तमवैति नित्यम् ,
तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः ॥ १ ॥

समस्त चराचर भूत-प्राणियोंके हृदयमें स्वयं प्रकाशरूपसे भासमान, सत् चित् और आनन्दरूप, ब्रह्मनिष्ठ-विरक्त-परमहंस संन्यासियोंकी परमगतिरूप जो तुरीय साक्षी चेतन आत्म-तत्त्व है, उसका मैं निरन्तर एकाग्रतासे एवं परम श्रद्धाभक्तिसे प्रातःकालमें स्मरण करता हूँ। जो स्वप्न, जाग्रत् और सुषुप्ति रूपी तीन अवस्थाओंका जाननेवाला निर्विकार द्रष्टा है, नित्य है, निष्कल-निरवयव ब्रह्म है, वही मैं हूँ। आकाशादि पांच भूतोंका अल्प समुदायरूप शरीर-इन्द्रिय आदि मैं नहीं हूँ।

प्रातर्भजामि मनसो वचसामगम्यम्,
वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण ।
यन्नेति नेति वचनैर्निगमा अवोचु-
स्तं देवदेव मजमच्युतमाहुरग्र्यम् ॥ २ ॥

जो तत्त्व मन और वाणीसे जाना नहीं जाता है, किन्तु जो मन-वाणीका प्रकाशक है, उस स्वयंज्योति सर्वात्मा भगवान्को मैं प्रातःकालमें भजता हूँ। जिसके सत्ता-स्फूर्तिरूपी अनुग्रहसे, तमाम वाणियाँ प्रतीत होती हैं, यानी तमाम वाणीसे उपलक्षित यावत् संसार जिसकी सत्तासे भासता है। ऋग् यजु आदि वेदोंने जिस सर्वाधिष्ठान तत्त्वको 'नेति नेति' वचनोंसे कहा है, यानी तमाम प्रपञ्चका निषेध करके परिशेषरूपसे बतलाया है, उस तत्त्वको ही विरक्त विद्वान् लोग अजन्मा, अविनाशी, सबसे श्रेष्ठ एवं देवोंके देव महादेवरूपसे प्रतिपादन करते हैं।

प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं,
पूर्णं सनातनदं पुरुषोत्तमाख्यम् ।
यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्त्तौ,
रज्ज्वां भुजङ्गम इव प्रतिभासितं वै ॥ ३ ॥

मायारूपी अन्धकारसे परे, सूर्यके समान ज्योतिःस्वरूप, यानी सर्वके प्रकाशक पुरुषोत्तम नामवाले पूर्ण सनातन पदको मैं प्रातःकालमें नमस्कार करता हूँ। जिस सर्वाभिन्न सर्वाधिष्ठान तत्त्वमें विद्वानोंको

यह चराचर जगत् रस्सीमें सर्पके समान मिथ्या कल्पित्त मालूम हो रहा है ।

श्लोकत्रयमिदं पुण्यं, लोकत्रयविभूषणम् ।
प्रातःकाले पठेद्यस्तु स गच्छेत्परमं पदम् ॥

तीनों लोकोंके भूषणरूप, इन पवित्र तीन श्लोकोंको जो प्रातः-कालमें पढ़ता है, वह ब्रह्मनिर्वाणरूपी परमपदको प्राप्त होजाता है ।

॥ इति प्रात स्मरण स्तोत्र ॥
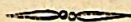
श्रीहरिशरणाष्टकम्

ध्येयं वदन्ति शिवमेव हि केचिदन्ये,
शक्तिं गणेशमपरे तु दिवाकरं वै ।
रूपैस्तु तैरपि विभासि यतस्त्वमेव,
तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ॥ १ ॥

कोई शिव ही को ध्येय यानी उपास्य कहते हैं, कोई शक्ति-भगवतीको, कोई गणेशको एवं कोई सूर्य-नारायणको ध्येय बताते हैं । परन्तु हे नाथ ! आप एक ही उन शिवादिक रूपोंसे प्रकट होते हैं ।

इसलिये हे हाथमें * शङ्खको धारण करनेवाले प्रभो ! मुझ अशरणका एक आप ही शरण हैं, यानी मुझ निराधार-असहायका आप ही आधार हैं, सहाय हैं, अथवा आप ही मेरे शरण यानी रक्षा करनेवाले हैं।

नो सोदरो न जनको जननी न जाया,
नैवात्मजो न च कुलं विपुलं वलं वा।
संदृश्यते न किल कोऽपि सहायको मे,
तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे॥ २॥

इस संसारमें न भाई सहायक दीखता है, न माता, न पिता, न स्त्री, न पुत्र, न कुल, न अधिक बल मेरा सहायक दीखता है; इसलिये हे हाथमें शङ्खको धारण करनेवाले ! आपही मेरे शरण-रक्षा करनेवाले हैं।

नोपासिता मदमपास्य मया महान्तः,
तीर्थानि चास्तिकधिया नहि सेवितानि।

* शङ्खपाणि साकार-मूर्ति विष्णु भगवान्का नाम है। शङ्खपाणिका आध्यात्मिक भाव इस प्रकार है। शङ्ख ॐकाररूप है। ॐकारमें जैसे तीन मात्राएँ और एक अमात्र-अर्धविन्दु है, ऐसे ही शङ्खमें साढ़े तीन चक्र होते हैं। शङ्खमें स्वभावसे ही ॐकारकी ध्वनि होती है। इसलिये शङ्ख ॐकाररूप है, और 'ॐ कार ए वेदँ सर्वम्' अर्थात् ॐकार सर्वजगत्रूप है। हाथसे सभी वस्तु नापी जाती है, जो ॐकाररूप सब जगत्को नाप लेता है—यानी जो सर्वजगत्में व्यापक है, वही हाथमें शङ्खको धारण करनेवाला, अमात्र ॐकारका लक्ष्य शुद्ध-सच्चिदानन्दरूप परमात्मा है।

देवार्चनं च विधिवन्नकृतं कदापि,
तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ॥ ३ ॥

हा ! बड़े ही खेद एवं लज्जाकी बात है कि—मैंने मद (गर्व) को छोड़कर महापुरुषोंकी उपासना (संगति) न की । आस्तिक-बुद्धिसे काशी आदि तीर्थोंका सेवन भी नहीं किया । न तो विधिपूर्वक शिवादि देवोंका पूजन ही किया, इसलिये हे हाथमें शङ्खको धारण करनेवाले ! आप मेरे शरण-रक्षा करनेवाले हैं ।

दुर्वासना मम सदा परिकर्षयन्ति,
चित्तं, शरीरमपि रोगगणा दहन्ति ।
सञ्जीवनं च परहस्तगतं सदैव,
तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ॥ ४ ॥

अनेक प्रकारकी बुरी-बुरी वासनाएँ मेरे चित्तको सदा दुःख दती रहती हैं, अनेक रोगोंका समुदाय शरीरको सदा जलाता रहता है, इस प्रकार मेरा यह क्षणभंगुर जीवन परतन्त्र हो रहा है, इसलिये हे हाथमें शङ्खको धारण करनेवाले ! आप ही मेरी शरण-यानी रक्षा करनेवाले हैं ।

पूर्वं कृतानि दुरितानि मया तु यानि,
स्मृत्वाऽखिलानि हृदयं परिकम्पते मे ।
ख्याता च ते पतितपावनता तु यस्मात्,
तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ॥ ५ ॥

प्रथम मैं जो-जो पाप-कर्म कर चुका हूँ, उन सबको स्मरण करके मेरा हृदय कांपता है, परन्तु हे प्रभो ! आपकी पतित-पावनता संसारमें प्रसिद्ध है, आपने बहुतसे पतितोंको पावन किया है, अतः मुझ पतितको भी आप अवश्य ही पावन करेंगे, इसलिये हे हाथमें शङ्खको धारण करनेवाले ! आप ही मेरी शरण यानी रक्षा करनेवाले हैं ।

दुःखं जराजननजं विविधाश्चरोगाः,
काकश्वसूकरजनिर्निरये च पातः ।
ते विस्मृतेः फलमिदं विततं हि लोके,
तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ॥ ६ ॥

मैं वृद्धावस्था एवं अनेक जन्मोंके द्वारा महादुःख भोग चुका हूँ, अनेक प्रकारके रोगोंका कष्टमय अनुभव, मुझे हो चुका है, काक-कूकर-शूकर आदि अधम योनियोंमें भी मैं उत्पन्न हो चुका हूँ, महापाप कर्मके प्रभावसे नरकमें भी गिर चुका हूँ । हे प्रभो ! यह सब कष्टमय फल, एकमात्र आपको भूल जानेसे ही हुआ है, संसारके सभी मनुष्योंको यह बात विदित है—प्रसिद्ध है, इसलिये हे हाथमें शङ्खको धारण करनेवाले ! आप ही मेरी शरण यानी रक्षा करने वाले हैं ।

नीचोऽपि पापवलितोऽपि विनिन्दितोऽपि,
ब्रूयात्तवाहमिति यस्तु किलैकवारम् ।

तं यच्छसीश ! निजलोकमिति व्रतं ते,
तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ॥ ७ ॥

हे प्रभो ! चाहे नीच हो, पापी हो, या संसारमें विशेषरूपसे निन्दित भी हो, परन्तु यदि वह 'हे नाथ ! मैं आपका हूँ' ऐसा एक बार भी कहे तो हे ईश ! आप उसे अपने परम-धाममें ले जाते हैं, ऐसी आपकी प्रतिज्ञा शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है । इसलिये हे हाथ में शङ्खको धारण करनेवाले ! आप ही मेरी शरण यानी रक्षा करने वाले हैं ।

वेदेषु धर्मवचनेषु तथाऽऽगमेषु,
रामायणेऽपि च पुराणकदम्बके वा ।
सर्वत्र सर्वविधिना गदितस्त्वमेव,
तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ॥ ८ ॥

वेदोंमें, मन्वादि धर्म-शास्त्रोंमें, तथा वेदान्त आदि दर्शन शास्त्रोंमें, रामायणमें तथा भागवत आदि सम्पूर्ण पुराणोंमें सर्वविधिसे एकमात्र आप ही जानने योग्य हैं । यानी तमाम शास्त्र एकमात्र आप को ही बतला रहे हैं, इसलिये हे हाथमें शङ्खको धारण करनेवाले ! आप ही मेरी शरण यानी रक्षा करनेवाले हैं ।

॥ इति श्रीहरिशरणाष्टकम् ॥

श्रीगुर्वष्टकम्

शरीरं सुरूपं तथा वा कलत्रं,
यशश्चारु चित्रं धनं मेरुतुल्यम् ।
मनश्चेन्नलग्नं हरेरङ्घ्रिपद्मे,
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ १ ॥

यदि शुद्ध एवं एकाग्रभावसे जगद्गुरु प्रभु श्रीहरिके चरणकमलों में मन नहीं लगा है तो शरीर सुन्दर एवं आरोग्ययुक्त हुआ तो उससे क्या ? सुन्दरी सती स्त्री प्राप्त हुई तो उससे भी क्या ? निर्मल अद्भुत एवं विस्तृत कीर्ति और सुवर्णमय सुमेरु पर्वतके समान विपुल धन प्राप्त हुआ तो भी उससे क्या ? कुछ नहीं । यानी श्रीहरि-भक्तिके बिना यदि संसारके सब वैभव प्राप्त हों तो भी वे सब व्यर्थ हैं, भाररूप हैं, शोक एवं दुःखके साधन हैं । नारायणस्वामीने क्या ही अच्छा कहा है—

विद्या वित्त सुरूप गुण, सुत दारा सुख भोग ।
नारायण हरि भक्ति विन, ये सब ही हैं रोग ॥

कलत्रं धनं पुत्र पौत्रादि कीर्तिं,
गृहं बान्धवाः जातिमेतद्धि सर्वम् ।
हरेरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं,
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥ २ ॥

यदि हरिरूप श्रीगुरुदेवके चरणकमलमें मन न लगा तो स्त्री, धन, पुत्र-पौत्रादि, कीर्ति, गृह, बन्धुवर्ग, जाति, इत्यादि सब कुछ होनेपर भी, उन सबसे क्या ? अर्थात् कुछ नहीं। गुरु-भक्ति बिना जीवन निष्फल है, निःसार है।

षडङ्गादि वेदो मुखे शास्त्रविद्या,
कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति।
हरेरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं,
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥ ३॥

यदि जगद्गुरु परमेश्वर श्रीहरिके चरणकमलोंमें मन नहीं लगाया और शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिषादि छः अङ्गो सहित ऋगादि वेद, पूर्व मीमाँसा, उत्तर मीमाँसा, सांख्य, योग, न्याय तथा वैशेषिक आदि शास्त्र, और चौदह विद्याओंको कण्ठस्थ भी करलिया हो, तो उससे क्या ? और गद्यपद्यात्मक काव्यादि रचनेका सामर्थ्य भी हो तो उससे क्या ? अर्थात् कुछ नहीं। हरि-भक्ति बिना तमाम विद्याकी प्राप्ति निष्फल है। वेद-शास्त्रादिकी विद्या का फल, हरि-भक्ति रहित पण्डितका जीवन पशुके समान है। हरि-भक्तिसे ही पाण्डित्य शोभाको पाता है।

विदेशेषु मान्यः स्वदेशेषु धन्यः,
सदाचारवृत्तेषु मत्तो न चान्यः।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥ ४॥

विदेशमें मान हो एवं स्वदेशमें प्रशंसा है और अपनी सदाचारपरायणत्ताका इतना बड़ा गर्व हो कि—मुझसे अधिक सदाचारी दूसरा कोई है ही नहीं, यह सब होनेपर भी यदि श्री हरिरूप गुरुदेवके चरणकमलमें निष्कपट भावसे मन नहीं लगा है तो इन सबसे कुछ भी लाभ नहीं हो सकता।

क्षमामण्डले भूप भूपालवृन्दैः,
सदा सेवितं यस्य पादारविन्दम्।
हरेरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं,
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥ ५॥

जिसके चरणकमलोंकी सेवा पृथ्वीमण्डलके तमाम राजा महाराजालोग सदा करते हों, तथापि यदि उसका चित्त श्रीहरिके चरणकमलोंमें एकाग्रतासे नहीं लगा है, तो ऐसे हरि-विमुख मनुष्यका इतना बड़ा सम्मान नितान्त निष्फल ही है। यानी हरिभक्तिशून्य मनुष्यका दंभादिसे राजाओंके द्वारा सम्मान हो तो भी उससे क्या? कुछ भी नहीं।

यशो मे गतं दिक्षु दानप्रतापात्,
जगद्वस्तु सर्वं करे यत्प्रभावात्।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं,
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥ ६॥

'दानके प्रतापसे मेरा यश सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त है, जिसके

प्रभावसे संसारके तमाम पदार्थ मेरे हाथमें हैं' ऐसा समझनेवाले दानशील उदार पुरुषका दानभी निष्फल है, यदि हरिरूप श्रीगुरुदेव के चरणकमलोंमें निष्कपटभावसे मन नहीं लगा है।

न भोगे न योगे न वा वाजिराजौ,
न कान्तामुखे नैव वित्तेषु चित्तम्।
हरेरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं,
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥ ७॥

यदि कोई ऐसा जितेन्द्रिय विचारशील महापुरुष हो कि– जिसका चित्त, न तो भोगविलासमें, न हठयोगादिमें, न उत्तम घोड़ों में, न चन्द्रमुखी कामिनीमें और न धन धान्यादिके संग्रहमें आसक्त हुआ हो, परन्तु ऐसे अनासक्ति एवं वैराग्यके होते हुए भी यदि जगद्गुरु श्रीहरिके चरणकमलोंमें एकग्रतासे मन नहीं लगा है तो उसकी जितेन्द्रियतासे एवं वैराग्यसे कुछ भी लाभ नहीं हो सकता।

अरण्ये न वा स्वस्य गेहे न कार्ये,
न देहे मनो वर्तते मे त्वनर्घ्ये।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं,
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥ ८॥

यदि कोई ऐसा विरक्त हो कि—जिसकी मनोवृत्ति, निज परिवारसे पूरित सम्पत्तिशाली घरमें, व्यापारमें, शरीरके पालन-पोषणादि में तथा अमूल्य पदार्थोंके संग्रहादि किसी भी कार्यमें न लगी हो,

किन्तु एकान्त अरण्यमें लगी हो; परन्तु श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंमें उसका मन न लगा हो तो उसका वह वैराग्य निरर्थक है।

अनर्घ्याणि रत्नानि भुक्तानि सम्यक्,
समालिङ्गिता कामिनी यामिनीषु।
हरेरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्नलग्नं,
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥९॥

यदि जगद्गुरु श्रीहरिके चरणकमलोंमें एकाग्रतासे मन नहीं लगा है, तो अमूल्य रत्नोंका उपभोग एवं रात्रिमें कामिनीका आलिङ्गन आदि प्राकृत-तुच्छ सुख होने पर भी क्या हुआ? कुछ भी नहीं।

गुरोरष्टकं यः पठेत्पुण्यदेही,
यतिर्भूपतिर्ब्रह्मचारी च गेही।
लभेद्वाञ्छितार्थं पदं ब्रह्मसञ्ज्ञं,
गुरोरुक्तवाक्ये मनो यस्य लग्नम् ॥ १०॥

जो पुण्यात्मा संन्यासी, नृपति, ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ इस श्रीगुर्वष्टकको पढ़ता है एवं जिसका मन श्रीगुरुदेवके कहे हुए वाक्यों में लगा है, यानी गुरुके उपदेशको जो शुद्ध श्रद्धासे अङ्गीकार करता है, वह अभिलषित वस्तु परमानन्दरूप ब्रह्मतत्त्वको प्राप्त होता है।

॥ इति श्रीगुर्वष्टकम् ॥

श्रीदक्षिणामूर्ति स्तोत्र

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं,
पश्यन्नात्मनि मायया वहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया ।
यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयम्,
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ १ ॥

दर्पणमें दीखती हुई नगरीके समान, यह तमाम नामरूपात्मक विश्व, अपने सच्चिदानन्द स्वरूप व्यापक आत्माके भीतर दृश्यमान है, यानी इस-कल्पित-प्रतीतिमात्र विश्वका आधार-अधिष्ठान एकमात्र-आत्मा ही है । जैसे निद्रा-दोषसे तीन कालमें भी अविद्यमान स्वप्न-प्रपञ्च सत्यकी तरह बाहर उत्पन्न हुएके समान, स्वप्नसाक्षी तैजस-आत्मामें प्रतीत होता है । तद्वत् यह जाग्रत-प्रपञ्च तीन कालमें भी अविद्यमान होनेपर विशुद्ध आत्मामें माया-शक्तिसे सत्यकी तरह भासता है । इस प्रकार जो इस द्वैत-प्रपञ्चको मिथ्या-मायामय निश्चय करके श्रीशङ्कर महादेवके समान श्रीगुरुदेवकी कृपासे अद्वैत ब्रह्मात्म-तत्त्वका बोध प्राप्त करता है, उसकी दृष्टिसे द्वैत-प्रपञ्चका सुतरां अत्यन्त अभाव हो जाता है । ऐसा अद्भुत साक्षात्कार जिस शिवरूप गुरुके अनुग्रहसे प्राप्त है, ऐसे श्रीगुरुमूर्तिरूप श्रीदक्षिणा-मूर्ति भगवान् श्रीमहादेवको यह मेरा श्रद्धाभक्तियुक्त नमस्कार है ।

बीजस्यान्तरिवाङ्कुरो जगदिदं प्राङ्‌ निर्विकल्पं पुन-
र्मायाकल्पित देशकालकलनावैचित्र्यचित्रीकृतम्‌ ।
मायावीव विजृम्भयत्यपि महायोगीव यः स्वेच्छया,
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ २॥

जैसे बीजके भीतर अव्यक्तरूपसे अङ्कुर रहता है, तद्वत्‌ यह दृश्यमान जगत्‌ पूर्वमें अव्यक्तरूपसे मायाविशिष्ट निर्विकल्प-ब्रह्ममें वर्तमान था। पश्चात्‌ अघटघटनापटीयसी माया-शक्तिके प्रभावसे अध्यस्त देश, काल, नाम, रूप, आदिकी विचित्र कल्पना द्वारा चित्रके समान व्यक्तरूपसे प्रकट हुआ। जैसे मायावी (जादूगर) या महायोगी अपनी विलक्षण-इच्छाशक्तिके द्वारा अनेक रूपसे प्रकट होजाता है, तद्वत्‌ जो परमात्मा अपनी शक्तिके द्वारा एकसे अनेकों रूप बनकर विविध-विलासोंका अनुभव करता है, 'एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय' (श्रुति)। ऐसे श्रीगुरुमूर्ति रूप श्रीदक्षिणामूर्ति भगवान्‌ श्रीमहादेवको यह मेरा श्रद्धाभक्तियुक्त नमस्कार है।

यस्यैव स्फुरणं सदात्मकमसत्कल्पार्थकं भासते,
साक्षात्तत्त्वमसीति वेदवचसा यो बोधयत्याश्रितान्‌।
यत्साक्षात्करणाद्भवेन्न पुनरावृत्तिभवाम्भोनिधौ,
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ३॥

जिसकी सत्ता-स्फूर्ति, असत्‌के समान मिथ्या द्वैत-प्रपञ्चमें अनुगत होनेके कारण मिथ्या-प्रपञ्च भी सत्‌की तरह प्रतीत होता है।

जो जगद्गुरु विश्वनाथ अपने अनन्य शरणागत-शिष्योंको 'तत्त्वमसि' वह तू है, उससे भिन्न नहीं; इस प्रकार वेद-वाक्योंके द्वारा साक्षात् स्वस्वरूपका उपदेश करते हैं। जिसके साक्षात् करनेपर इस भीषण-संसाररूपी महासागरमें जन्म-मरणरूपी पुनरावृत्ति नहीं होती है। ऐसे श्रीगुरुमूर्तिरूप श्रीदक्षिणा-मूर्ति भगवान् श्रीमहादेवको यह मेरा श्रद्धा-भक्तियुक्त नमस्कार है।

नानाच्छिद्रघटोदरस्थितमहादीपप्रभाभास्वरं,
ज्ञानं यस्य तु चक्षुरादि करणद्वारा बहिःस्पन्दते।
जानामीति तमेव भान्तमनुभात्येतत्समस्तं जगत्,
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ४ ॥

छोटे-छोटे अनेक छेदवाले घटके भीतर स्थित बड़े दीपकके प्रकाशके समान प्रकाशवाले जिस चेतन-आत्माका ज्ञान, चक्षुआदि इन्द्रियोंके द्वारा बाहर प्रकाशित होता है, जिससे मैं रूपको जानता हूँ, शब्दको सुनता हूँ, इत्यादि अनुभव प्राणीमात्रको होता है। इसलिये उस चेतन आत्माके प्रकाश होनेके बाद ही यह समस्त चराचर जगत् प्रकाशित होता है। ऐसे श्रीगुरुमूर्तिरूप श्रीदक्षिणा-मूर्ति भगवान् श्रीमहादेवको यह मेरा श्रद्धा-भक्तियुक्त नमस्कार है।

देहं प्राणमपीन्द्रियाण्यपि चलां बुद्धिं च शून्यं विदुः,
स्त्रीबालान्धजडोपमास्त्वहमिति भ्रान्ता भृशं वादिनः।

मायाशक्तिविलासकल्पितमहाव्यामोहसंहारिणे,
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ५ ॥

जो स्त्रीके समान विवेकहीन हैं, बालकके समान दुराग्रही हैं एवं उन्मत्तके समान बुद्धिहीन हैं, ऐसे विषयासक्त मूढ़लोग देह, प्राण, इन्द्रिय, चञ्चल-बुद्धि एवं शून्यको ही 'अहं' (मैं) कहते हैं, इसलिये वे लोग भ्रान्त होनेके कारण मिथ्या बकवादी माने जाते हैं। भगवान् श्रीशङ्कर अपने शरणागत शिष्योंके हृदयसे मायाशक्तिका कार्य जो कल्पित महामोह है, उसके नाश करनेवाले हैं। ऐसे श्रीगुरुमूर्ति-रूप श्रीदक्षिणामूर्ति भगवान् श्रीमहादेवको यह मेरा श्रद्धाभक्तियुक्त नमस्कार है।

राहुग्रस्तदिवाकरेन्दुसदृशो मायासमाच्छादनात्,
सन्मात्रः करणोपसंहरणतो योऽभूत्सुषुप्तः पुमान्।
प्रागस्वाप्समिति प्रबोधसमये यः प्रत्यभिज्ञायते,
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ६ ॥

जैसे राहुसे सूर्य और चन्द्रमा आच्छादित होता है, तद्वत् सन्मात्र चेतन आत्मा भी मायासे आच्छादित होता है। इसलिये वही आत्मा चक्षुरादि बाह्यकरण एवं बुद्ध्यादि आभ्यन्तर करणका विलय करके सुषुप्त होता है। यानी अज्ञानकी गोदमें सो जाता है। और वही आत्मा जाग्रत् होकर 'मैं पूर्वमें सोया था' 'अब जाग रहा हूँ' ऐसा पूर्वापरका अनुसन्धान करके स्वयं जानता है, एवं अन्यसे

कहता भी है । ऐसे श्रीगुरुमूर्तिरूप श्रीदक्षिणा-मूर्ति भगवान् श्रीमहादेव को यह मेरा श्रद्धाभक्तियुक्त नमस्कार है ।

बाल्यादिष्वपि जाग्रदादिषु तथा सर्वास्ववस्थास्वपि,
व्यावृत्तास्वनुवर्तमानमहमित्यन्तः स्फुरन्तं सदा ।
स्वात्मानं प्रकटी करोति भजतां यो भद्रया मुद्रया,
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ७ ॥

बाल्य, कौमार, आदि एवं जाग्रत् , स्वप्न आदि समस्त परस्पर व्यभिचारी अवस्थाओंमें जो अनुस्यूत है, यानी जो इन समस्त अवस्थाओंका साक्षी है, और इन विकारी अवस्थाओंके आने जाने पर भी जो कूटस्थ, एकरस, एवं निर्विकार रहता है । जो बुद्धिरूपी गुहाके भीतर 'अहं' (मैं हूँ) इस प्रकारके अनुभवसे सदा प्रकाशित है । जो श्रद्धा विश्वास पूर्वक एकाग्रतासे भजन करनेवाले महानुभाव हैं, उनके लिये भगवान् श्रीशङ्कर भद्रामुद्राके द्वारा उपदेशसे अपने सर्वात्मस्वरूपको प्रकट करते हैं, ऐसे श्रीगुरुमूर्तिरूप श्रीदक्षिणामूर्ति भगवान् श्रीमहादेवको यह मेरा श्रद्धा भक्तियुक्त नमस्कार है ।

विश्वं पश्यति कार्यकारणतया स्वस्वामिसम्बन्धतः,
शिष्याचार्यतया तथैव पितृपुत्राद्यात्मना भेदतः ।
स्वप्ने जाग्रति वा य एष पुरुषो मायापरिभ्रामितः,
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ८ ॥

शरीररूपी पुरीमें शयन करनेवाला यह जीव, मायाके वश

होकर चारों तरफ रात्रिदिन भ्रमण करता रहता है, कभी स्वप्न जाता है तो कभी जाग्रत् में। और कार्यकारणके भावसे, स्वस्वामी सम्बन्धसे, शिष्य आचार्यके भावसे तथा पिता, पुत्र, पति, पत्नी आदिके भेदसे इस चराचर विश्वको देखता है, ऐसे श्रीगुरुमूर्तिरू श्रीदक्षिणामूर्ति भगवान् श्रीमहादेवको यह मेरा श्रद्धा-भक्तियुक्त नम स्कार है।

भूरंभास्यनलोऽनिलोऽम्बरमहर्नाथो हिमांशुः पुमान्,
इत्याभाति चराचरात्मकमिदं यस्यैव मूर्त्यष्टकम्।
नान्यत्किञ्चन विद्यते विमृशतां यस्मात् परस्माद्विभोः,
तस्मै श्रीगुरूमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ९॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र और पुरु (आत्मा) चर-अचर (स्थावर जंगम) स्वरूप जो आठ मूर्ति हैं, उनके द्वारा जो सदा प्रकाशित होरहा है। और ब्रह्मनिष्ठ गुरु के द्वारा जो आत्मा-अनात्माके विचार करनेवाले हैं, उनको उ परात्पर व्यापक परमात्मासे भिन्न कुछ भी विद्यमान नहीं दीखता है ऐसे श्रीगुरुमूर्तिरूप श्रीदक्षिणा-मूर्ति भगवान् श्रीमहादेवको यह मे श्रद्धा भक्तियुक्त नमस्कार है।

सर्वात्मत्वमिति स्फुटीकृतमिदं यस्मादमुष्मिंस्तवे,
तेनास्य श्रवणात्तथार्थमननाद्ध्यानाच्च संकीर्तनात्।
सर्वात्मत्वमहाविभूतिसहितं स्यादीश्वरत्वं स्वतः,
सिद्ध्येत्तत्पुनरष्टधा परिणतं चैश्वर्यमव्याहतम् ॥ १०

इस दक्षिणामूर्ति स्तोत्रमें मुमुक्षुओंके लिये सर्वात्मभाव स्पष्ट किया है। इससे इसके श्रवणसे, इसके अर्थके ममन से, ज्ञेय वस्तुके निरन्तर ध्यान (अनुसन्धान) से और योग्य अधिकारियोंके लिये इसका उपदेश करनेसे सर्वात्मभावरूपी महाविभूति सहित ईश्वर-भाव स्वतः सिद्ध होता है, और पुनः अष्ट सिद्धि एवं अष्ट ऋद्धिके रूपमें परिणत हुआ अप्रतिहत ऐश्वर्य भी प्राप्त होता है।

॥ इति श्रीदक्षिणामूर्ति स्तोत्र ॥

अच्युताष्टकम्

अच्युतं केशवं रामनारायणं,
कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं,
जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे ॥ १ ॥

जो अच्युत, केशव, राम, नारायण, कृष्ण, दामोदर, वासुदेव, हरि, श्रीधर, माधव, गोपिकाके वल्लभ (परम प्रिय) जानकीके स्वामी श्रीरामचन्द हैं, उनको मैं भजता हूँ।

अच्युतं केशवं सत्यभामाधवं,
माधवं श्रीधरं राधिकाराधितम्।

इन्दिरामन्दिरं चेतसा सुन्दरं,
देवकीनन्दनं नन्दजं सन्दधे ॥ २

जो अच्युत, केशव, सत्यभामाके प्रियपति, लक्ष्मीके करनेवाले, श्रीराधिकाजीसे आराधित, शोभाके धाम, सुन्दर-मन देवकीको आनन्द देनेवाले हैं, उन नन्दबाल भगवान्‌का मैं निरन्तर ध्यान करता हूँ।

विष्णवे जिष्णवे शङ्खिने चक्रिणे,
रुक्मिणीरागिणे जानकीजानये ।
वल्लवीवल्लभायार्चितायात्मने,
कंसविध्वंसिने वंशिने ते नमः ॥ ३

जो विष्णु-व्यापक स्वरूप हैं, सर्वदा जयशील हैं, श चक्रको धारण करनेवाले हैं, रुक्मिणीदेवीमें जिनका अनुराग है जानकी भगवतीके प्राणप्रिय स्वामी हैं, गोपिकाके जो प्राणा कंसको मारनेवाले, बन्शीके बजानेवाले, सब जगत्‌के पूज्य, स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको सदा नमस्कार हो।

कृष्ण ! गोविन्द ! हे राम ! नारायण !,
श्रीपते ! वासुदेवाजित ! श्रीनिधे !।
अच्युतानन्त ! हे माधवाधोक्षज !,
द्वारकानायक ! द्रौपदीरक्षक ! ॥

हे कृष्ण ! हे गोविन्द ! हे राम ! हे नारायण ! हे

ति ! हे वासुदेव ! हे अजित ! यानी किसीसे भी पराजित नहीं होनेवाले, हे शोभाके समुद्र ! हे अच्युत ! हे अनन्त ! यानी देश-कालसे एवं वस्तुसे भी जिसका अन्त-परिच्छेद नहीं है, हे माधव ! मायाके नियामक, हे अधोक्षज ! यानी इन्द्रियजन्य तुच्छ जिनने तिरस्कृत किया है, हे द्वारकाके स्वामी ! हे द्रौपदीके क ! आपको सदा नमस्कार हो ।

राक्षसक्षोभितः सीतयाशोभितो,
दण्डकारण्यभूपुण्यताकारणम् ।
लक्ष्मणेनान्वितो वानरैः सेवितोऽ-
गस्त्यसंपूजितो राघवःपातु माम् ॥ ५ ॥

जो रावणादि राक्षसोंसे क्षोभ (कोप) को प्राप्त हुए हैं, सीता-सतीसे जो सुशोभित हैं, जो दण्डकारण्यकी पृथ्वीकी पवित्रताके ण हैं, यानी जिनने दण्डकारण्यको पवित्र किया है, जो लक्ष्मण अन्वित (युक्त), हनुमान् आदि वानरोंसे सेवित, अगस्त्य र्षिसे पूजित, रघुवंश-भूषण श्रीरामचन्द्र हैं, वह मेरी रक्षा करो ।

धेनुकारिष्टकोऽनिष्टकृद्द्वेषिणां
केशिहा कंसहृद्वंशिकावादकः ।
पूतनाकोपकः सूरजाखेलनो,
बालगोपालकः पातु मां सर्वदा ॥ ६ ॥

जो धेनुकासुरके नाशक, एवं द्वेषी असुरोंके अनिष्ट करनेवाले

हैं, जो केशी राक्षस एवं कंसके मारनेवाले हैं एवं बन्शीके बजाने-वाले हैं। जो कोपावेशसे पूतना राक्षसीको मारनेवाले, एवं देवोंके अंशसे अवतीर्ण हुए गोपबालोंसे खेलनेवाले हैं ऐसे बाल गोपाल श्रीकृष्ण, सर्वदा मेरी रक्षा करो।

विद्युदुद्योतवत्प्रस्फुरद्वाससं,
प्रावृडम्भोदवत्प्रोल्लसद्विग्रहम्।
वन्यया मालया शोभितोरःस्थलं,
लोहिताङ्घ्रिद्वयं वारिजाक्षं भजे ॥ ७ ॥

बिजलीके चमककी तरह जिनके पीले वस्त्र सुशोभित हैं वर्षाकालके मेघकी तरह जिनका श्यामसुन्दर शरीर अत्यन्त शोभायमान है, एवं वन-तुलसीकी मालासे जिनका वृक्षस्थल सुशोभित है जिनके कमलके समान सुन्दर नेत्र हैं, एवं लाल-लाल चरणकमल हैं ऐसे भगवान्का मैं भजन करता हूँ।

कुञ्चितैःकुन्तलैर्भ्राजमानाननं,
रत्नमौलिं लसत्कुण्डलं गण्डयोः।
हारकेयूरकं कंकणप्रोज्ज्वलं,
किंकिणीमञ्जुलं श्यामलं तं भजे ॥ ८ ॥

घुँघराले-काले-काले टेढ़े बालोंसे जिनका मुखकमल अत्य सुशोभित है एवं जिनके मस्तकमें अनेक प्रकारके बेशकीमती चमक रहे हैं। जिनके लाल-लाल कपालोंमें रत्नजड़ित-कुण्डलों

द्युति शोभा पारही है । जिनने हार एवं केयूर धारण किये हैं, कङ्कणों (हाथके आभूषण) की और किङ्किणी (क्षुद्रघण्टिकासे युक्त पाद का आभूषण) की द्युति एवं ध्वनिसे जो अतीव मन-मोहक प्रतीत हो रहे हैं, ऐसे श्यामसुन्दर भगवान्को मैं निरन्तर भजता हूँ ।

अब अच्युताष्टक स्तोत्रके पढ़नेका फल बतलाते हैं—

अच्युतस्याष्टकं य पठेदिष्टदं,
प्रेमतः प्रत्यहं पूरुषः सस्पृहम् ।
वृत्ततः सुन्दरं कर्तृविश्वम्भरम्,
तस्य वश्यो हरिर्जायते सत्वरम् ॥ ९ ॥

जो कोई मनुष्य, एकमात्र प्रभु-प्राप्तिकी अभिलाषाको रखकर, प्रतिदिन बड़े ही प्रेमसे इस अच्युताष्टक स्तोत्रको पढ़ता है । जिसका कर्ता विश्वम्भर भगवान् आचार्य श्रीशङ्कर हैं, एवं जो छन्दसे भी अत्यन्त सुन्दर हैं । उसके वशमें श्रीहरि शीघ्र ही हो जाते हैं ।

॥ इति अच्युताष्टकम् ॥

षट्पदी स्तोत्र

अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम्।
भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः ॥ १ ॥

हे विष्णो ! (व्यापक स्वरूप परमात्मन्) क्षुद्र अभिमानरूपी मेरे अविनयको दूर करो, मेरे उच्छृङ्खल मनका दमन करो, मरुजल-रूपी विषय-लालसाकी तृष्णाका शमन करो, तमाम प्राणियोंके ऊपर दयाका विस्तार करो । और मुझ जैसे आपके शरणागत जनोंको संसार-सागरसे तारकर पारकर दो ।

दिव्यधुनीमकरन्दे परिमल-परिभोगसच्चिदानन्दे ।
श्रीपतिपदारविन्दे भवभयखेदच्छिदे वन्दे ॥ २ ॥

जो चरणकमल, संसारके जन्ममरणरूपी भय, एव आध्यात्मिकादि त्रिविध तापके छेदन करनेवाले हैं, जिन चरणकमलसे श्रीभागीरथी गंगारूपी मकरन्द (कमल-पुष्परस) सतत प्रवाहित होता रहता है । जिन चरण-कमलोंका सच्चिदानन्दरूपी परिमल (पुष्पोंकी श्रेष्ठ सुगन्ध) तमाम चतुर्दश भुवनमें विस्तृत होरहा है, ऐसे लक्ष्मीपति श्रीविष्णु भगवान्के चरणकमलोंमें मैं निरन्तर वन्दना करता हूँ ।

सत्यपि भेदापगमे नाथ ! तवाहं न मामकीनस्त्वम् ।
सामुद्रोहि तरङ्गःक्वचन समुद्रो न तारङ्गः ॥ ३ ॥

यद्यपि सच्चिदानन्द दृष्टिसे आपमें एवं मुझमें कुछ भी भेद नहीं हैं, जो आप हैं सो मैं हूँ, तथापि हे नाथ! मैं आपका हूँ, आप मेरे नहीं। जैसे जलरूपसे समुद्र और तरङ्ग एक हैं, जलदृष्टिसे दोनोंमें भेद नहीं माना जाता, परन्तु समुद्र एवं तरङ्गदृष्टिसे दोनोंका कल्पित भेद भी है। जैसे समुद्रके तरङ्ग कहे जाते हैं, तरङ्गोंका समुद्र नहीं कहा जाता। समुद्रके अधीन तरङ्ग होते हैं, तरङ्गके अधीन समुद्र नहीं होता। समुद्रके गुण, कर्म, शक्ति, अनन्त हैं; तरङ्गके गुणादिक अनन्त नहीं। तद्वत् आपका मैं कहा जाता, आप मेरे नहीं कहेजाते। आपके अधीन मैं हूँ, आप मेरे अधीन नहीं। समष्टि एवं व्यष्टिरूपी उपाधिसे आपसे मेरा कल्पित भेद है, उपाधि के छोड़ देने पर कुछ भी भेद नहीं। समष्टि उपाधि होनेसे आपके गुण, कर्म, शक्ति, ज्ञान एवं ऐश्वर्य अनन्त हैं। मुझ व्यष्टि उपाधि वालेके गुणादिक अनन्त नहीं, इसलिये मैं आपका ही हूँ।

उद्धृतनग! नगभिदनुज! दनुजकुलामित्र! मित्रशशीदृष्टे।
दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किं भवतिरस्कारः॥ ४॥

हे उद्धृतनग! यानी गोवर्धन पर्वतको धारण करनेवाले! हे इन्द्रके छोटे भाई वामन भगवान्! असुरोंके कुलके शत्रु, हे सूर्य एवं चन्द्ररूपी नेत्रवाले! आपके यथार्थ स्वरूपका साक्षत्कार होजाने पर क्या शोक-मोहमय संसारका तिरस्कार नहीं हो सकता? अर्थात् अवश्य ही होजाता है।

मत्स्यादिभिरवतारैरवतारैरवताऽवता सदा वसुधाम् ।
परमेश्वर ! परिपाल्यो भवता भवतापभीतोऽहम् ॥ ५ ॥

हे परमेश्वर ! आप, मत्स्य, वराह आदि अनेक अवतारोंको ग्रहण कर सदा इस धराधामकी रक्षा करते आये हैं । हे भगवन् ! मैं इस असार संसारके त्रिविधतापोंसे भयभीत हुआ हूँ, इसलिये आप मेरी इस भयसे अवश्य ही रक्षा कीजिये ।

दामोदर ! गुणमन्दिर ! सुन्दरवदनारविन्द ! गोविन्द ! ।
भवजलधिमथनमन्दर ! परमं दरमपनय त्वं मे ॥ ६ ॥

हे दामोदर ! हे कल्याण-गुणोंके निधान ! हे सुन्दर-मनोहर मुखकमलवाले हे गोविन्द ! हे संसाररूपी समुद्रके मथन करनेमें मन्दराचलके समान मेरे उच्छृङ्खल अहंकारका आप कृपया नाश करो ।

नारायण ! करुणामय ! शरणं करवाणि तावकौ चरणौ ।
इति षट्पदी मदीये वदनसरोजे सदा वसतु ॥ ७ ॥

हे करुणानिधान ! हे नारायण ! आपके चरणोंकी मैं शरण होता हूँ । और यह षट्पदी स्तोत्र, मेरे मुखकमलमें सदा निवास करो ।

॥ इति षट्पदी स्तोत्र ॥

वेदसार शिव-स्तव

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं,
गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम् ।
जटाजूटमध्ये स्फुरद्गांगवारिं,
महादेवमेकं स्मरामि स्मरारिम् ॥ १ ॥

जो जीवरूप अज्ञानी पशुओंके पालक हैं, एवं पापोंके नाशक, परमेश्वर हैं, जिनने श्रेष्ठ हाथीके चर्मको धारण किया है, एवं जो सबसे श्रेष्ठ हैं, जिनके जटाजूटके मध्यमें परमपावनी श्रीगंगाजीका जल सुशोभित हो रहा है। ऐसे जो कामदेवके शत्रु, एक-अद्वितीय देवोंके देव महादेवका मैं निरन्तर स्मरण करता हूँ।

महेशं सुरेशं सुरारार्तिनाशं,
विभुं विश्वनाथं विभूत्यंगभूषम् ।
विरूपाक्षमिन्द्वर्कवह्नित्रिनेत्रं,
सदानन्दमीडे प्रभुं पञ्चवक्त्रम् ॥ २ ॥

जो महान् ईश्वर, एवं देवताओंके भी ईश्वर हैं, जो देवोंके कष्टको नाश करनेवाले, व्यापक, विश्वके स्वामी हैं, जिनने अपने प्रत्येक अङ्गोंमें विभूति-भस्मकी भूषा की है, जो विरूपाक्ष हैं यानी जिनके विषम सूर्य चन्द्र एवं अग्निरूपी तीन नेत्र हैं, एवं जिनके

ाँच मुख हैं, ऐसे सदा आनन्दस्वरूप प्रभु श्रीविश्वनाथकी मैं स्तुति
रता हूँ ।

गिरीशं गणेशं गले नीलवर्णं,
गवेन्द्राधिरूढं गुणातीतरूपम् ।
भवं भास्वरं भस्मना भूषितांगम्,
भवानीकलत्रं भजे पञ्चवक्त्रम् ॥ ३ ॥

जो कैलास पर्वतके स्वामी एवं वीरभद्र आदि गणोंके भी स्वामी
, जिनके गलेमें नीला वर्ण है, जो श्रेष्ठ श्वेत बैलके ऊपर आरूढ़
, जिनका तीन गुणोंसे अतीतस्वरूप हैं, भस्मसे जिनके तमाम अङ्ग
भूषित हैं, जो प्रकाशस्वरूप हैं एवं तमाम संसारके उत्पादक हैं,
से भगवती भवानीके पति, पाँच मुखवाले श्रीमहादेवको मैं भजता हूँ ।

शिवाकान्त ! शम्भो ! शशांकार्धमौले !,
महेशानं ! शूलिन् ! जटाजूटधारिन् ! ।
त्वमेको जगद्व्यापको विश्वरूप !
प्रसीद प्रसीद प्रभो ! पूर्णरूप ! ॥ ४ ॥

हे पार्वतीके प्राणवल्लभ ! हे शम्भो ! हे मस्तकमें अर्धचन्द्र
धारण करनेवाले ! हे महेशान ! हे शूलको धारण करनेवाले !
विश्वरूप ! तुम ही इस जगत्में व्याप्त हो, हे प्रभो ! हे पूर्णरूप !
प मुझपर प्रसन्न होवो, प्रसन्न होवो ।

परात्मानमेकं जगद्बीजमाद्यं,
निरीहं निराकारमोङ्कार वेद्यम् ।
यतो जायते पाल्यते येन विश्वं,
तमीशं भजे लीयते यत्र विश्वम् ॥ ५ ॥

जिससे यह तमाम जगत् पैदा होता है, जिससे समग्र संस
की रक्षा होती है एवं अन्तमें निखिल विश्व जिसमें लीन होजा
है, ऐसा एक-अद्वितीय, जगत्का कारण चेष्टा-रहित, निराका
ॐकारसे जानने योग्य, परमात्मा महेश्वरको मैं भजता हूँ ।

न भूमिर्न चापो न वह्निर्न वायु,
र्न चाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा ।
न ग्रीष्मो न शीतं न देशो न वेषो,
न यस्यास्ति मूर्तिस्त्रिमूर्तिं तमीडे ॥ ६ ॥

उस व्यापक परमतत्त्वरूप महादेवमें न पृथ्वी है, न जल है
न वह्नि है, न वायु है, न आकाश है, न तन्द्रा है, न निद्रा है, न ग्रीष
(ऊष्ण ऋतु) है, न शीत है, न देश है एवं न तो किसी प्रका
का वर्ष है, यद्यपि उस निराकार तत्त्वकी वस्तुगत्या कोई भी मूर्ति
नहीं है, तथापि प्रेमी भक्तोंकी भावनासे जो ब्रह्मा विष्णु एवं महेश्व
रूप तीन साकार मूर्तिसे प्रतीत होते हैं, ऐसे परात्पर महादेवकी मैं
स्तुति करता हूँ ।

अजं शाश्वतं कारणं कारणानां,
शिवं केवलं भासकं भासकानाम् ।

तुरीयं तमः पारमाद्यन्तहीनं,
प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम् ॥ ७ ॥

जो अज (अजन्मा) हैं, शाश्वत (सनातन) हैं, महत्तत्त्व प्रकृति आदि कारणोंका भी जो कारण हैं, सूर्यादि प्रकाशकोंका भी भी जो प्रकाशक हैं, केवल कल्याण स्वरूप हैं, अवस्थात्रयके साक्षी जो तुरीय हैं, आदि और अन्तसे रहित हैं, अज्ञानसे भी अतीत हैं, एवं जो द्वैतसे रहित, पर, पवित्र महादेव रूप तत्त्व हैं, उनके शरणमें मैं जाता हूँ।

नमस्ते नमस्ते विभो ! विश्वमूर्ते !,
नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्ते ! ।
नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम्य !,
नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य ! ॥ ८ ॥

हे विभो ! (व्यापक स्वरूप) हे विश्वमूर्ते ! आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो। हे चिदानन्दमूर्ते ! आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो। हे तप एवं योगरूपी साधनसे जानने योग्य ! आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो। हे श्रुतिके पवित्र ज्ञानसे प्राप्त होने योग्य ! आपको नमस्कार हो नमस्कार हो।

प्रभो ! शूलपाणे ! विभो ! विश्वनाथ !,
महादेव ! शम्भो ! महेश ! त्रिनेत्र ! ।
शिवाकान्त ! शान्त ! स्मरारे ! पुरारे !,
त्वदन्यो वरेण्यो न मान्यो न गण्यः ॥ ९ ॥

हे प्रभो ! हे हाथमें त्रिशूलको धारण करनेवाले ! हे विभो ! हे विश्वनाथ ! हे महादेव ! हे शम्भो ! हे महेश ! हे त्रिनेत्रधारी ! हे पार्वतीके प्राणवल्लभ ! हे शान्त ! हे कामदेवके शत्रु ! हे त्रिपुरासुरके शत्रु, आपसे और कोई भी देव श्रेष्ठ नहीं है, मानने योग्य भी नहीं है, एवं न तो सर्वेश्वर कोटिमें गिनने योग्य है, यानी आपही सब देवोंसे श्रेष्ठ, एवं सबसे अधिक मान्य एवं गण्य हैं ।

शम्भो ! महेश ! करुणामय ! शूलपाणे !,
गौरीपते ! पशुपते ! पशुपाशनाशिन् ! ।
काशीपते ! करुणया जगदेतदेकः,
त्वं हंसि पासि विदधासि महेश्वरोऽसि ॥१०॥

हे शम्भो ! हे महेश ! हे करुणाके महासागर ! हे शूलपाणे ! हे गौरीके पति ! हे जीवरूपपशुओंके पति ! हे पशुओंके अविद्यारूपी पाशके नाशक ! हे काशी नगरीके स्वामी ! आपही इस तमाम विश्वका अपनी अहेतुकी दयासे नाश करते हैं, रक्षा करते हैं, एवं उत्पन्न करते हैं, इसलिये आप महान् ईश्वर हैं, यानी ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं ।

त्वत्तो जगद्भवति देव ! भव ! स्मरारे !,
त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड ! विश्वनाथ ! ।
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश !,
लिङ्गात्मकं हर ! चराचरविश्वरूपिन् ! ॥११॥

हे हर ! हे चराचर (स्थावर जंगम) विश्वरूप ! हे देव ! हे भव ! (संसारके उत्पादक) हे कामदेवके शत्रु ! यह समस्त संसार आपसेही उत्पन्न होता है । हे विश्वनाथ ! हे मृड ! (सुख-स्वरूप) आपमें ही यह तमाम विश्व आश्रित होकर रहता है । हे ईश्वर ! आपहीमें यह लिङ्गात्मक निखिल विश्व, महाप्रलय होनेपर लीन होजाता है ।

॥ इति वेदसार शिव-स्तव ॥

धन्याष्टकम्

तज्ज्ञानं प्रशमकरं यदिन्द्रियाणां,
तज्ज्ञेयं यदुपनिषत्सु निश्चितार्थम् ।
ते धन्या भुवि परमार्थनिश्चितेहाः,
शेषास्तु भ्रमनिलये परिभ्रमन्ति ॥ १ ॥

यथार्थ ज्ञान वही है, जो चक्षुरादि इन्द्रियोंकी चञ्चलताको शान्त करनेवाला हो यानी जिससे इन्द्रियोंकी शान्ति न हो, वह यथार्थ ज्ञान नहीं है, किन्तु अज्ञान है । ज्ञेय (जानने योग्य तत्त्व) वही है, जो उपनिषदोंमें ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मश्रोत्रिय गुरुके द्वारा निश्चित किया गया हो । धन्य वे ही हैं कि—जिन्होंने इस धराधाममें आकर परमार्थ-तत्त्वका पूर्णरूपसे निश्चय किया है । परिशिष्ट तो यानी

जिन्होंने परमार्थ-तत्त्वका निश्चय नहीं किया है, वे तो विपरीत-भ्रमरूपी स्थानमें रहकर जन्म-मरणके कष्टमय चक्रमें सदा भ्रमण करते रहते हैं।

आदौ विजित्य विषयान्मदमोह राग-
द्वेषादि शत्रुगणमाहृतयोगराज्याः।
ज्ञात्वाऽमृतं समनुभूय परात्मविद्या-
कान्तासुखा वन गृहे विचरन्ति धन्याः॥ २॥

आदिमें शब्दादि विषयोंको जीतकर जिन्होंने मद, मोह, राग, द्वेष, आदि शत्रुओंके समुदायको राजयोगसे विनाश कर दिया है। और अद्वैतरूपी अमृत-तत्त्वको सद्गुरुके द्वारा जान करके एवं उस तत्त्वका मनन निदिध्यासनके द्वारा अच्छी प्रकारसे अनुभव करके जो परमात्मा-विद्यारूपी मनोहारिणी स्त्रीके साथ परमानन्दका आस्वादन करते हैं, और वनरूपी विशाल-गृहमें जो स्वच्छन्द एवं निर्भय होकर विचरते हैं, वे धन्य हैं।

त्यक्त्वा गृहेरतिमधोगति हेतु भूता-
मात्मेच्छयोपनिषदर्थरसं पिबन्तः।
वीतस्पृहा विषयभोग-पदे विरक्ताः,
धन्याश्चरन्ति विजनेषु विरक्तसंगाः॥ ३॥

अधोगतिका कारण जो मोह-ममतास्पद गृहमें प्रीति है, उसका परित्याग करके एवं आत्म-तत्त्वके साक्षात्कारकी प्रबल-इच्छा करके,

जो उपनिषदोंके अद्वैत-तत्त्वज्ञानरूपी सर्वमधुरातिशायी अखण्डानन्दमय रसका अहर्निश पान करते हैं। एवं जो संसारके भोग-विलासोंकी स्पृहासे रहित हैं यानी जो पूर्ण निस्पृह हैं, विषय-भोगोंसे नितान्त विरक्त हैं और जो संसार-संग रहित पवित्र निर्जन स्थानमें विचरते हैं, वे धन्य हैं।

त्यक्त्वा ममाहमिति बन्धकरे पदे द्वे,
मानावमानसदृशाः समदर्शिनश्च ।
कर्तारमन्यमवगम्य तदर्पितानि,
कुर्वन्ति कर्मपरिपाकफलानि धन्याः ॥ ४ ॥

अहं (मैं) मम (मेरा) ये दोनों पद ही बन्धन करनेवाले हैं, उनका परित्याग करके जिन्होंने मान एवं अपमानको समान जान लिया है और जो तमाम चराचर विश्वमें एकमात्र अद्वैत ब्रह्मरूपी समतत्त्वको ही देखनेके स्वभाववाले हैं । आत्मासे अन्य देह इन्द्रियादि अनात्माको ही जो कर्ता समझते हैं और उनसे किये हुए कर्मके फलोंको उन्हींके अर्पण करते हैं, यानी जो अपने आत्माको अकर्ता एवं अभोक्ता निश्चय करते हैं, वे धन्य हैं ।

त्यक्त्वैषणात्रयमवेक्षित मोक्षमार्गा,
भैक्षामृतेन परिकल्पितदेहयात्राः ।
ज्योतिः परात्परतरं परमात्मसंज्ञं,
धन्या द्विजा रहसि ह्यवलोकयन्ति ॥ ५ ॥

लोकेषणा, पुत्रेषणा, और धनेषणा ये तीन एषणा (कामना) ओंका परित्याग करके जिन्होंने भक्ति-वैराग्य एवं ज्ञानरूपी मोक्ष

मार्गका अच्छी तरहसे परिचय किया है। भिक्षारूपी अमृतसे जो अपने शरीरका निर्वाह करते हैं। पर जो हिरण्यगर्भ है, उससे भी पर, जिसका नाम परमात्मा है, उस स्वयंज्योति तत्त्वका जो द्विज (दो संस्कारोंसे युक्त) हृदयरूपी एकान्त देशमें अवलोकन करते हैं, वे धन्य हैं।

नासन्न सन्न सदसन्न महन्न चाणु,
न स्त्री पुमान्न च नपुंसकमेक बीजम्।
यैर्ब्रह्म तत्समनुपासितमेकचित्तै,
र्धन्या विरेजुरितरे भवपाशबद्धाः ॥ ६ ॥

जो ब्रह्मतत्त्व असत्—शशश्रृङ्गके समान नहीं है, एवं जो सत्—सत्त्वधर्मसे युक्त भी नहीं है, और विरुद्ध होनेसे सत् असत्—उभयरूप भी नहीं है, एवं जो महान् यानी महत्परिमाणसे युक्त नहीं है, न तो अणु है, न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है यानी वह ब्रह्मतत्त्व सकल सांसारिक धर्मोंसे अतित है। जो तमाम विश्वका एकमात्र कारण है. आश्रय है। ऐसे ब्रह्मतत्त्वकी जिन्होंने एकाग्र एवं अनन्य चित्त होकर उपासना की है, वे ही धन्य है और तमाम विश्वमें वे ही शोभा पाते हैं, दूसरे यानी जिन्होंने ब्रह्मोपासना नहीं की है, वे संसाररूपी कष्टप्रद पाशमें बधे हुए हैं, अपने ही प्रमाद से स्वयं-आप दुःखी होरहे हैं।

अज्ञानपंकपरिमग्नमपेतसारं,
दुःखालयं मरणजन्मजरावसक्तम्।

संसारबन्धनमनित्यमवेत्य धन्या,
ज्ञानासिना तदवशीर्य विनिश्चयन्ति ॥ ७ ॥

अज्ञानरूपी कीचड़से भरे हुए, सार रहित, दुःखोंका स्थान, जन्म मरण और वृद्धावस्थासे युक्त, संसाररूपी बन्धनको अनित्य-क्षणभङ्गुर निश्चय करके जो ज्ञानरूपी तलवारस उपसंसार-बन्धनको काटकर परम-तत्त्वका सुदृढ़ निश्चय करते हैं यानी उस परतत्त्वमें अपनी बुद्धिको स्थिर रखते हैं, वे धन्य हैं।

शान्तैरनन्यमतिभिर्मधुरस्वभावै,
रेकत्वनिश्चितमनोभिरपेतमोहैः।
साकं वनेषु विजितात्मपदस्वरूपं,
तद्वस्तु सम्यगनिशं विमृशन्ति धन्याः ॥ ८ ॥

अनन्य यानी एक आत्मासे अतिरिक्त विषयमें नहीं जानेवाली बुद्धिसे युक्त, शान्त यानी रागद्वेषसे रहित, मधुर-विनयशील स्वभाव-वाले, जिसके मनमें अद्वैत-तत्त्वका ही निश्चय है, एवं जो संसारके सकल मोहसे रहित हैं, ऐसे सज्जन महात्माओंके साथ शान्त पवित्र जंगलोंमें स्वस्वरूप आत्म-तत्त्वका निश्चय करके जो अहर्निश उसी ही आत्म-वस्तुका एकाग्र चित्तसे चिन्तन करते हैं, वे धन्य हैं।

अहिमिव जनयोगं सर्वदा वर्जयेद्यः,
कुणपमिव सुनारीं त्यक्तुकामो विरागी।

विषमिव विषयान्यो मन्यमानो दुरन्ता,
जयति परमहंसो मुक्तिभावं समेति ॥ ९ ॥
(मालिनी वृत्तम्)

कुपित-भयंकर सर्पके समान जो सांसारिक विषय लम्पट मनुष्यों के संगको सर्वदा छोड़ देता हे। घृणास्पद-मृतक शरीरके समान जो सुन्दरी युवती नारीको उपेक्षा बुद्धिसे छोड़कर विषय-लालसासे विरक्त होता है। हलाहल विषके समान जो शब्दादि विषयोंको परिणाममें दुःख एवं शोकप्रद समझकर उनसे उपराम होता है। ऐसा जो परमहंस-संन्यासी है, वही अखण्ड जयको प्राप्तकर मुक्ति-भाव (परमपद) को प्राप्त होता है।

सम्पूर्णं जगदेव नन्दनवनं सर्वेऽपि कल्पद्रुमाः,
गांगंवारिसमस्तवारिनिवहः पुण्याः समस्ताः क्रियाः।
वाचः प्राकृतसंस्कृताः श्रुतिशिरो वाराणसीमेदिनी,
सर्वावस्थितिरस्य वस्तुविषया दृष्टे परे ब्रह्मणि ॥१०॥

अनन्त-अखण्ड अद्वय आत्मस्वरूप परब्रह्मका साक्षात्कार होनेपर उस महापुरुषके लिये सम्पूर्ण जगत् नन्दनवनके समान पूर्ण-प्रसन्नतासे भरा हुआ होजाता है, तमाम वृक्ष कल्पवृक्षके समान आनन्दप्रद होजाते हैं, सकल-जलका समुदाय गंगा-जलके समान पवित्र होजाता है, उठना-बैठना आदि तमाम क्रियाएँ पुण्य-मय होजाती हैं, प्राकृत (हिन्दी आदि) संस्कृत आदि वाणी वेद-वाणीके

समान हर्षप्रद बन जाती हैं, विशेष क्या कहें, इस विद्वान् विरक्त सत्पुरुषकी तमाम अवस्थिति, परब्रह्ममय ही होजाती है, 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' 'तरति शोकमात्मवित्' ।

॥ इति धन्याष्टकम् ॥

श्रीगङ्गाष्टकम्

भगवति ! तव तीरे नीरमात्राशनोऽहं,
विगतविषयतृष्णः कृष्णमाराधयामि ।
सकलकलुषभंगे ! स्वर्गसोपानसंगे,
तरलतरतरंगे ! देवि ! गंगे ! प्रसीद ॥ १ ॥

हे ऐश्वर्यादि सम्पूर्ण षड्विध भगसे सम्पन्ना भगवती भागीरथी ! हे सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाली ! हे स्वर्गकी सीढीसे सम्बन्ध करानेवाली ! हे अत्यन्त चञ्चल लहरोंवाली ! तुम्हारे पवित्र-एकान्त तटपर मैं केवल जलाहार करता हुआ, विषय-भोगकी लालसासे रहित होकर भगवान् श्रीकृष्ण-परमात्माकी आराधना करता हूँ । हे दिव्य स्वरूपवाली देवी गङ्गे ! मुझपर प्रसन्न होओ, आपके विमल प्रसादसे ही मेरा श्रीकृष्णाराधन सफल होगा ।

भगवति ! भवलीलामौलिमाले ! तवाम्भः,
कणमणुपरिमाणं प्राणिनो ये स्पृशन्ति ।

अमरनगरनारी चामरग्राहिणीनां,
विगतकलिकलङ्कातङ्कमङ्के लुठन्ति ॥ २ ॥

हे सम्पूर्ण ऐश्वर्योंवाली भगवती ! हे भगवान् महादेवके जटा मुकुटमें मालारूप आभूषणके समान सुशोभित देवी गंगे ! जो प्राणी बूंदके समान थोड़ा-सा भी तुम्हारे जलका स्पर्श करते हैं, वे कलि-कालके पापमय कलङ्करूपी मलके उपद्रवसे रहित होकर देव-नगरी अमरावतीकी चामर ग्रहण करनेवाली देवाङ्गनाओंकी गोदमें लोटते हैं।

ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती,
स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्डशैलात्स्खलन्ती ।
क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती दुरितचयचमूर्निर्भरं भर्त्सयन्ती,
पाथोधिं पूरयन्ती सुरनगरसरित्पावनी नः पुनातु ॥ ३ ॥

ब्रह्माण्डको विदारण करती हुई, भगवान् श्रीमहादेवके मस्तक-पर रही हुई जटारूपिणी लताको प्रफुल्लित करती हुई स्वर्गलोकसे नीचे गिरती हुई, सुमेरु पर्वतकी गुफाकी मध्य शिलापरसे बहती हुई, पृथ्वीके पृष्ठ भागपर लोटती हुई, पापोंके समूहका नाश करती हुई, देवलोककी पवित्र नदी भगवती भागीरथी गंगा हमको पवित्र करे।

मज्जन्मातङ्गकुम्भच्युतमदमदिरामोदमत्तालिजालं,
स्नानैः सिद्धाङ्गनानां कुचयुगविगलत्कुङ्कुमासंगपिङ्गम् ।
सायं प्रातर्मुनीनां कुशकुसुमचयैश्छन्नतीरस्थनीरं,
पायान्नो गाङ्गमम्भः करिकलभकराक्रांतरंहस्तरङ्गम् ॥ ४ ॥

जलक्रीडाके समयमें स्नान करनेवाले हाथियोंके कपोलोंसे गिरती हुई मदरूपी मदिराको पाकर आनन्दित हुए भ्रमर समूहसे युक्त, स्नान करनेके कारण सिद्धोंकी स्त्रियोंके स्तनद्वयसे छुटी हुई केसरके सम्बन्धसे पीले रंगवाला, प्रातःकाल व सायंकाल संध्या-वन्दन करनेसे मुनियोंके कुश और पुष्पोंके समूहसे ढके हुए तटके निकटका जल, तथा हाथियोंके बच्चों द्वारा सूण्ढोंसे रोके जानेके कारण वेगसे वहनेवाला तरङ्गयुक्त परमपावन गंगाजल, हमारी रक्षा करे।

आदावादिपितामहस्य नियमव्यापारपात्रे जलं,
पश्चात्पन्नगशायिनो भगवतः पादोदकं पावनम् ।
भूयः शम्भुजटाविभूषणमणिर्जह्नोर्महर्षेरियं,
कन्या कल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी दृश्यते ॥ ५ ॥

आरम्भमें प्रथम, आद्य शरीरी पितामह-ब्रह्माके कमण्डलुमें जलरूपसे विद्यमान थी। तत्पश्चात् शेषशैय्यापर शयन करनेवाले भगवान् विष्णुके चरणकमलोंका प्रक्षालन करने पर विष्णुपादोदकी बनी। फिर भगवान् श्रीशङ्करकी जटाओंका श्रेष्ठ आभूषण-मणिके समान सुशोभित हुई। तत्पश्चात् जह्नु महर्षिकी जंघासे निकलने के कारण जह्नु-कन्या जान्ह्वी हुई। इस प्रकार अनेक रूपोंमें प्रकट होनेवाली सकल पापोंका नाश करनेवाली भगवती भागीरथी पुण्यशाली मनुष्योंसे देखीजाती है।

शैलेन्द्रादवतारिणी निजजले मज्जज्जनोत्तारिणी,
पारावारविहारिणी भवभयश्रेणीसमुत्सारिणी ।

शेषाहेरनुकारिणी हरशिरोवल्लीदलाकारिणी,
काशीप्रान्तविहारिणी विजयते गंगा मनोहारिणी ॥ ६ ॥

पर्वतराज हिमालयसे निकलनेवाली, अपने जलमें स्नान करने वाले मनुष्योंको तारनेवाली, महासागरमें विहार करनेवाली, संसारके जन्म-मरणादि भय-समुदायको दूर करनेवाली, शेषनागके समान तिरछी चालसे चलनेवाली, भगवान् श्रीशङ्करके मस्तकपर लता-पत्रके समान आकारवाली, परमपावनी श्रीकाशीजीके प्रदेशमें उत्तरवाहिनी होकर विहार करनेवाली, मनको हरनेवाली श्रीगंगा भगवतीकी सदैव जय हो ।

कुतोऽवीचिर्वीचिस्तव यदि गता लोचनपथं,
त्वमापीता पीताम्बरपुरनिवासं वितरसि ।
त्वदुत्संगे गंगे पतति यदि कायस्तनुभृतां,
तदा मातः शातक्रतवपदलाभोऽप्यतिलघुः ॥ ७ ॥

हे मातः गङ्गे ! किसी विशेष पुण्यके प्रभावसे ही आपके मनोहर-लहरोंकी शोभा नेत्रमार्गसे हृदयमें प्राप्त होती है । हे देवी ! तुम्हारे पवित्र-जलका पान करनेसे आप पीताम्बरधारी भगवान् श्री विष्णुका पुर-वैकुण्ठधामके निवासको देती हो । हे मातः ! यदि शरीर-धारियोंके शरीर आपकी परम-पावनी गोदमें गिरते हैं, तो उस समय उसके आनन्दके सामने देवराज इन्द्रके पदकी प्राप्ति भी अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होती है ।

गंगे ! त्रैलोक्यसारे ! सकलसुरवधूधौतविस्तीर्णतोये !,
पूर्णे ब्रह्मस्वरूपे ! हरिचरणरजोहारिणि ! स्वर्गमार्गे ! ।
प्रायश्चित्तं यदि स्यात्तव जलकणिका ब्रह्महत्यादिपापे,
कस्त्वां स्तोतुं समर्थस्त्रिजगदघहरे देवि ! गंगे ! प्रसीद ॥८॥

हे मातः गङ्गे ! हे तीनों लोकोंके सारस्वरूपिणी ! हे समस्त देवाङ्गनाओंके स्नानसे सुगन्धित विस्तीर्ण-निर्मल जलवाली ! हे पूर्ण ब्रह्मस्वरूपिणी ! हे विष्णु भगवान्‌के चरणोंकी रज (धूलि) को हरण करनेवाली ! हे स्वर्गके मार्गस्वरूपिणी ! यदि मनुष्योंके पास ब्रह्महत्यादि पाप हैं तो उन पापोंके पायश्चितके लिये आपके जलका छोटा-सा कण ही पर्याप्त है । हे तीन लोकोंके पापोंको हरनेवाली ! देवी गङ्गे ! आपकी स्तुति करनेंमें कौन समर्थ है ? अतः हे मातः आप हम पर प्रसन्न होओ ।

मातर्जाह्नवि ! शम्भुसंगवलिते ! मौलौ निधायाञ्जलिं,
त्वत्तीरे वपुषोऽवसानसमये नारायणाङ्घ्रिद्वयम् ।
सानन्दं स्मरतो भविष्यति मम प्राणप्रयाणोत्सवो,
भूयाद्भक्तिरविच्युता हरिहराद्वैतात्मिका शाश्वती ॥ ९ ॥

हे मातः जाह्नवी ! हे भगवान् शङ्करकी जटाओंमें वलय (कंकण) के समान आकारवाली ! मैं नम्रीभूत मस्तकमें हाथको जोड़कर तुम्हारे पवित्र तटपर देहावसानके समय श्रीमन्नारायणके दोनों चरणकमलोंका आनन्दपूर्वक एकाग्रतासे स्मरण करता हुआ मेरे

प्राण-प्रयाणका उत्सव हो, उस समय मुझे हरि-हरमें अभेद स्वरूपिणी अद्वैतात्मिका अविचल-अनन्या विशुद्ध प्रेम-भक्ति प्राप्त हो ।

गङ्गाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतो नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १० ॥

जो मनुष्य शुद्ध होकर इस पवित्र गंगाष्टकको पढ़ता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर अन्तमें विष्णुलोकको जाता है ।

॥ इति श्रीगङ्गाष्टकम् ॥

श्रीगोविन्दाष्टकम्

सत्यं ज्ञानमनन्तं नित्यमनाकाशं परमाकाशं,
गोष्ठप्राङ्गणरिङ्गणलोलमनायासं परमायासम् ।
मायाकल्पितनानाकारमनाकारं भुवनाकारं,
क्ष्मामानाथमनाथं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥१॥

जो परमात्मा सत्य (तीनकालमें भी अबाधित) ज्ञान एवं अनन्त (देश काल एवं वस्तुकृत परिच्छेदसे रहित) स्वरूप हैं । जो नित्य (उत्पत्ति नाशसे रहित) आकाशसे पृथक् अथवा छिद्र-रहित-ठोस एवं स्वयंप्रकाश स्वरूप हैं । वही निराकार परमात्मा साकाररूपसे प्रकट होकर व्रजकी गो-शालाओंके प्राङ्गणमें गो-वत्सोंके पीछे दौड़नेमें चपल बाल-कृष्ण श्रीश्यामसुन्दर हैं । वस्तुगत्या वह

प्रभु संसारके तमाम श्रमसे रहित निर्विकार कूटस्थ हैं, तथापि अनादि-अविद्याके सम्बन्धसे कर्तृत्व भोक्तृत्वादि धर्मोंका अनुभव करके श्रम-युक्त हैं। यद्यपि वह भगवान् निर्गुण-निराकार हैं, तथापि अघट-घटनापटीयसी माया-शक्तिके सम्बन्धसे विविध दिव्यादिव्य अनेक शरीरादि आकारसे प्रतीत होते हैं एवं समस्त चतुर्दश-भुवनके आका-रसे भी प्रतीत होते हैं। जो पृथ्वीदेवी एवं लक्ष्मीदेवीके स्वामी हैं और आप स्वयं स्वतन्त्र हैं ऐसे परमानन्दस्वरूप गोविन्द भगवान् श्रीकृष्ण परमात्माको हे जीवो! आप लोग श्रद्धाभक्तिपूर्वक नम-स्कार करो।

मृत्स्नामत्सीहेति यशोदाताडन-शैशव-संत्रासं,
व्यादितवक्त्रालोकितलोकालोकचतुर्दशलोकालिम्।
लोकत्रयपुरमूलस्तम्भं लोकालोकमनालोकम्,
लोकेशं परमेशं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दनम् ॥२॥

"हे कृष्ण! इस दूध, दही, मक्खन आदि समस्त खाद्यपदार्थ-युक्त गृहमें रहकर भी तुम मिट्टी खाते हो" इस प्रकार यशोदा-माता द्वारा की गई ताड़नासे बालकोचित-भयसे युक्त होकर, "हे मातः! मैंने मिट्टी नहीं खाई है, अगर खाई हो तो यह मेरा मुख देखो" ऐसा कहकर खोले हुए अपने मुखमें माताको लोकालोक पर्वतसहित चौदह लोकोंके समुदायको दर्शन करानेवाले प्रभु श्रीकृष्ण ही भुर्भुवः स्वः ये तीन लोकरूपी पुरके कारणरूप आधार हैं। अन्यके प्रकाशसे स्वयं

प्रकाशित न होने पर भी जो अपनी स्वतः ज्योतिसे समस्त लोकोंके ईश्वर एवं ब्रह्मादि देवोंके भी नियन्ता अन्तर्यामी हैं, परमानन्दस्वरूप गोविन्द भगवान् श्रीकृष्ण परमात्माको हे जीवो ! आप लोग श्रद्धा-भक्तिपूर्वक नमस्कार करो ।

त्रैविष्टपरिपुवीरघ्नं क्षितिभारघ्नं भवरोगघ्नं,
कैवल्यं नवनीताहारमनाहारं भुवनाहारम् ।
वैमल्यस्फुटचेतोवृत्ति विशेषा भासमनाभासं,
शैवं केवलशान्तं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥३॥

जो प्रभु, स्वर्गके शत्रु रावणादि वीरोंको मारनेवाले, एवं पृथ्वीके पापमय भारको हटानेवाले हैं, सद्गुरुरूपसे संसारके जन्म-मरणरूप रोगको मिटानेवाले, कैवल्य-मोक्षस्वरूप हैं, प्रेमभक्तिके वश होकर मक्खनका भोजन करनेवाले होने पर भी वस्तुगत्या स्वयं आहारसे रहित हैं, सच्चिदानन्द स्वरूपके साक्षात्कारसे सम्पूर्ण जगत्को चिन्मा-त्रावशेष करनेवाले एवं रोगादि दोषरहित विशुद्ध ब्रह्माकारमय चित्त-वृत्ति विशेषमें प्रकट होने वाले हैं, पर प्रकाशसे प्रकाशित न होने वाले स्वयं प्रकाश हैं । जो परमार्थमें कल्याण स्वरूप एवं दृश्य प्रपञ्च के संसर्गसे रहित हैं, ऐसे परमानन्दस्वरूप गोविन्द भगवान् श्रीकृष्ण परमात्माको हे जीवो ! आप लोग श्रद्धाभक्तिपूर्वक नमस्कार करो ।

गोपालं प्रभुलीलाविग्रह गोपालं कुलगोपालं,
गोपीखेलन गोवर्धनधृति लीलालालितगोपालम् ।

गोभिर्निगदितगोविन्दस्फुट नामानं बहुनामानं,
गोधीगोचरदूरं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥ ४ ॥

जो प्रभु गौओंका पालन करनेवाले, एवं सर्वशक्तिमान् होनेके कारण लीलाके लिये दिव्य-शरीर धारण करके वैदिक-मर्यादाकी रक्षा करनेवाले हैं। जो प्रभु कुलगोपाल हैं यानी (कु=पृथ्वी, ल=लीन, गो=इन्द्रिय) पृथ्वीमें लीन होनेवाले शरीर एव इन्द्रियोंकी प्रेरणा करनेवाले हैं। गोपियोंके साथ खेल (क्रीडा) करनेके लिये गोवर्धन पर्वतको अंगुली पर धारणकर लीला (अनायास) से एवं बड़े प्यारसे जो गोपोंकी रक्षा करनेवाले हैं। वेदोंके द्वारा कहा गया 'गोविन्द' ऐसे स्पष्ट नामवाले होने पर भी जो राम कृष्णादि अनेक नाम वाले हैं। इन्द्रिय एवं बुद्धिकी विषयतासे परे यानी उनसे जो अगम्य हैं ऐसे परमानन्दस्वरूप गोविन्द भगवान् श्रीकृष्ण परमात्माको हे जीवो ! आप लोग श्रद्धाभक्तिपूर्वक नमस्कार करो।

गोपीमण्डलगोष्ठीभेदं भेदावस्थमभेदाभं,
शश्वद्गोखुरनिर्धूतोद्धृत धूली धूसर सौभाग्यम्।
श्रद्धाभक्तिगृहीतानन्दमचिन्त्यं चिन्तितसद्भावं,
चिन्तामणिमणिमानं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥५॥

जो परमप्रेम-भक्तिमती गोपियोंके मण्डलके साथ क्रीडा विशेष करनेवाले हैं, गोप, गोपी, गो, वत्स, आदि अनेक रूपोंसे अवस्थित होने पर भी जो वास्तवमें उन सबके साथ अभेदरूपसे प्रकाशमान

हैं। गौओंके खुरोंसे निरन्तर उड़ी हुई परम पवित्र धूलिसे पाण्डुवर्ण होकर जो इससे अपना सौभाग्य माननेवाले हैं। सात्त्विक श्रद्धा एवं विशुद्ध-प्रेमभक्तिके द्वारा जो परमानन्दरूपसे ग्रहण किये जानेवाले हैं, वस्तुगत्या जो शब्दशक्ति एवं बुद्धिशक्तिसे भी अचिन्त्य हैं तथापि श्रुतियोंके द्वारा जिसका सद्भाव (सत्ता) निश्चित है। जो अत्यन्त सूक्ष्म दुर्लक्ष्य हैं तथापि जो 'चिन्तामणि' के समान भक्तोंके मनकी अभिलाषाको पूर्ण करनेवाले हैं, ऐसे परमानन्दस्वरूप गोविन्द भगवान् श्रीकृष्ण परमात्माको हे जीवो! आप लोग श्रद्धाभक्तिपूर्वक नमस्कार करो।

स्नानव्याकुलयोषिद्वस्त्रमुपादायागमुपारूढं,
व्यादित्सन्तीरथ दिग्वस्त्रा ह्युपादातुमुपकर्षन्तम्।
निर्धूतद्वयशोकविमोहं बुद्धं बुद्धेरन्तस्थं,
सत्तामात्रशरीरं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ ६॥

जो प्रभु, स्नान करनेमें तल्लीन गोपियोंके वस्त्रोंको लेकर कदम्ब वृक्षके ऊपर चढ़ने वाले, एवं दिगम्बर (नग्न) होनेके कारण वस्त्र ग्रहण करनेकी इच्छावाली गोपियोंको वस्त्र देनेके लिये अपने समीप बुलानेवाले हैं। जिसमें शोक एवं मोह दोनोंका अत्यन्त अभाव है, जो स्वयंप्रकाश विज्ञानघन एवं सबकी बुद्धिमें साक्षी-द्रष्टा रूपसे वर्तमान हैं, जिसका सत्तामात्र-एकरस त्रिकाला-बाध्य अविनाशी स्वरूप है, ऐसे परमानन्द स्वरूप गोविन्द भगवान् श्रीकृष्ण परमात्माको हे जीवो! आप लोग श्रद्धाभक्तिपूर्वक नमस्कार करो।

कान्तं कारणकारणमादिमनादिं कालघनाभासं,
कालिन्दीगतकालियशिरसि नृत्यन्तं बहुनृत्यन्तम् ।
कालं कालकलातीतं कलिताशेषं कलिदोषघ्नम् ।
कालत्रयगतिहेतुं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥ ७ ॥

जो परमसुन्दर एवं सर्व जगत्का कारण प्रकृतिका भी कारण-अधिष्ठान हैं, जो सबका आदि उत्पत्ति स्थान एवं स्वयं अनादि (कारण रहित) हैं, प्रलय-कालके मेघके समान मनोहर हैं, कालिन्दी-यमुनामें रहनेवाले कालिय-नागके फनपर नृत्य करनेवाले, एवं अनेक रूपोंसे विविध नृत्य करनेवाले हैं, जगत्के संहारकर्ता महाकालरूप हैं। भूत, भविष्यत् , एवं वर्तमानरूप काल और त्रुति, निमेष, काष्ठा आदि कलासे भी अतीत हैं। सम्पूर्ण विश्वके रचनेवाले एवं कलियुगके दोषोंका नाश करनेवाले हैं । प्रातः मध्यान्ह एवं सायं इन तीन कालोंकी शीघ्रगतिके कारण हैं, ऐसे परमानन्दरूप गोविन्द भगवान् श्रीकृष्ण परमात्माको हे जीवो ! आपलोग श्रद्धाभक्तिपूर्वक नमस्कार करो ।

वृन्दावनभुवि वृन्दारकगणवृन्दाराधितवन्द्येहं,
कुन्दाभामलमन्दस्मेरसुधानन्दं सुहृदानन्दम् ।
वन्द्याशेषमहामुनिमानसवन्द्यानन्दपदद्वन्द्वं,
वन्द्याशेषगुणाब्धिं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥८॥

वृन्दावनकी पवित्र भूमिमें रासलीलाके समय देवताओंके समुदायसे पूजित एवं प्रशंसित दिव्य क्रीड़ावाले एवं कुन्दपुष्प

(चमेली) के समान सुशोभित निर्मल मन्द हास्यसे अमृततुल्य परमानन्द देनेवाले हैं। सर्वभूतोंके सुहृद्—भक्तजनके लिये जो परमसुखरूप हैं एवं विश्व-वन्दनीय अशेष नारदादि महामुनियों के मानस-भवनमें जिनके परमपावन आनन्दप्रद ध्येय चरणकमल विद्यमान हैं। जो अशेष शान्त्यादि कल्याण गुणगणके समुद्र हैं, ऐसे परमानन्द स्वरूप गोविन्द भगवान् श्रीकृष्ण-परमात्माको हे जीवो! आपलोग श्रद्धाभक्तिपूर्वक नमस्कार करो।

गोविन्दाष्टकमेतदधीते गोविन्दार्पितचेता यो,
गोविन्दाच्युत माधव विष्णो गोकुलनायक कृष्णेति।
गोविन्दाङ्घ्रिसरोजध्यानसुधाजलधौतसमस्ताघो,
गोविन्दं परमानन्दामृतमन्तस्थं स समभ्येति ॥ ९ ॥

गोविन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें अपने चित्तको अर्पण आनी एकाग्र करके और श्रीगोविन्द प्रभुके चरणकमलोंका ध्यानरूपी अमृत-जलसे समस्त पापोंका विनाश करके जो प्रभु-प्रेमी महानुभाव हे गोविन्द! हे अच्युत! हे माधव! हे विष्णो! हे गोकुलनायक! हे कृष्ण! इत्यादि प्रभुके परमपावन नामोंको भक्तिपूर्वक पुकार कर इस गोविन्दाष्टकका प्रेमपूर्वक पाठ करता है, वह प्रभु-भक्त, निःसन्देह परमानन्द स्वरूप, अमृत स्वरूप, एवं सर्वभूतोंके हृदयमें साक्षीरूपसे स्थित गोविन्द भगवान्को प्राप्त होता है।

॥ इति श्रीगोविन्दाष्टकम् ॥

उपदेश पञ्चक

जिस समय महेश्वर परावतार भगवान् आचार्य श्रीशङ्कर स्वामी जीका वैदिक धर्मका उद्धार एवं अवैदिक धर्मका मर्दनरूपी अवतार-कार्य समाप्त हुआ। और श्रीशङ्कर स्वामीजी महाकैलासका प्रस्थान करनेके लिये उद्युक्त हुये, उस समय श्रीस्वामीजीके समीप अनेक गृहस्थ, ब्रह्मचारी, एवं संन्यासी शिष्य मण्डली विशेषरूपसे उपस्थित थी, क्योंकि प्रथमसे ही उनलोगोंको श्रीस्वामीजीने अपने प्रस्थानका समय वतला दिया था। उस सभी प्रकारकी शिष्य मण्डलीकी विनम्र प्रार्थनासे श्रीशङ्करस्वामीजी अन्तिम उपदेश देने लगे, जो पांच श्लोकोंमें संक्षिप्त है—

वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयताम्।
तेनेशस्य विधीयतामपचितिः काम्ये मतिस्त्यज्यताम्॥
पापौघः परिधूयतां भवसुखे दोषोऽनुसंधीयता-
मात्मेच्छा व्यवसीयतां निजगृहात्तूर्णं विनिर्गम्यताम्॥ १॥

वेदोंका प्रतिदिन अध्ययन करो। वेदोंमें कहे हुए याग, दान, होम, तप, जप आदि शुभ कर्मोंका श्रद्धा भक्तिके साथ अनुष्ठान करो। इन शुभ कर्मोंके समर्पण द्वारा एकमात्र उस जगदन्तर्यामी, चराचरव्यापी, परमेश्वरकी निष्काम प्रेमसे उपासना करो। इस असार

संसारकी तुच्छ कामनाओंमें अपनी बुद्धिको न लगाओ। बुरी वासनाओं रूपी पाप समुदायका सदाचार एवं सद्विचारसे नाश करो। संसारके क्षणिक, दुःखबहुल, नाममात्रके विषय सुखोंमें दोषोंका बारंबार अनुसंधान करो। प्रबल तत्त्वजिज्ञासाको धारणकर सांसारिक अपनी तुच्छ इच्छाओंका विध्वंस करो। पश्चात् यानी अधिकार परिपक्व होनेपर ममतास्पद अपने गृहसे शीघ्र ही बाहर हो जाओ, अर्थात् सन्यासको गृहण करो।

सङ्गः सत्सु विधीयतां भगवतो भक्तिर्दृढाऽऽधीयताम्।
शान्त्यादिः परिचीयतां दृढतरं कर्माशु संत्यज्यताम्॥
सद्विद्वानुपसृप्यतां प्रतिदिनं तत्पादुके सेव्यताम्।
ब्रह्मैकाक्षरमर्थ्यतां श्रुतिशिरोवाक्यं समाकर्ण्यताम्॥ २॥

सदाचारी, उदार चरित, पवित्र, महानुभावोंका सदा संग करो। उस जगन्नियन्ता, आनन्दनिधि, विश्वनाथ, भगवान्में अनन्य, निष्काम, प्रेममयी दृढ़ भक्ति धारण करो। शान्ति, दान्ति, उपरति, आदि दैवी गुणोंका निरन्तर सेवन करो। राग-द्वेष प्रचुर, अशान्तिप्रद, कर्मोंका शीघ्रही परित्याग करो। ब्रह्मश्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, विरक्त, विद्वान् महापुरुषोंके समीप जाओ, और प्रतिदिन उन महापुरुषोंकी पादुकाओंका सेवन करो, यानी उनकी यथाशक्य सेवा-शुश्रुषा करके उनकी सदुपदेशरूपी आज्ञाओंका पालन कर उनके कृपापात्र बनो। ॐ रूपी एकाक्षर ब्रह्मका अर्थानुसंधानपूर्वक

निरन्तर चिन्तन करो। और वेदोंका सर्वोत्तम भागरूपी उपनिषद्-वाक्योंका अर्थ सहित उन महापुरुषोंसे श्रवण करो।

वाक्यार्थश्च विचार्यतां श्रुतिशिरःपक्षः समाश्रीयताम्।
दुस्तर्कात्सुविरम्यतां श्रुतिमतस्तर्कोऽनुसन्धीयताम्॥
ब्रह्मैवास्मि विभाव्यतामहरहर्गर्वः परित्यज्यताम्।
देहेऽहंमतिरुज्झ्यतां बुधजनैर्वादः परित्यज्यताम्॥ ३॥

'अयमात्मा ब्रह्म' 'अहं ब्रह्मास्मि' 'तत्त्वमसि' 'प्रज्ञानं ब्रह्म' आदि महावाक्योंका अर्थ उन महापुरुषोंके द्वारा एकाग्रतासे विचारो। वेदोंका शिरोमणि उपनिषद् भागसे प्रतिपादन किया हुआ अद्वैत सिद्धान्त-रूपी पक्षका बड़े ही आदरपूर्वक आश्रय करो। बहिर्मुख-दुराग्रही मनुष्य-परिकल्पित, प्रमाणशून्य झूठे तर्क-वितर्कोंसे उपराम हो जाओ। श्रुतिरूपी प्रमाण-मूलक, विवेकी सत्पुरुषोंके मान्य, सत्तर्कोंका अनु-संधान करो। 'मैं सच्चिदानन्द परिपूर्ण नित्य शुद्ध बुद्ध ब्रह्म हूँ' इस प्रकार निरन्तर अपने असली आत्मस्वरूपकी दृढ़ भावना रक्खो। जाति, कुल, विद्या, आदि मायिक पदार्थोंके गर्वको एकदम छोड़ दो। क्षणभङ्गुर, तुच्छ, शरीर आदिमें अहं बुद्धिका शीघ्रही परि-त्याग करो। श्रद्धेय, ब्रह्मनिष्ठ विरक्त, विद्वानोंके साथ मिथ्या वाद विवाद करना छोड़ दो, यानी उनसे बतलाये हुए पथका श्रद्धाके साथ अवलम्बन करो।

क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यतां प्रतिदिनं भिक्षौषधं भुज्यताम् ।
स्वाद्वन्नं न तु याच्यतां विधिवशात्प्राप्तेन संतुष्यताम् ॥
शीतोष्णादि विषह्यतां न तु वृथा वाक्यं समुच्चार्यताम् ।
औदासीन्यमभीप्स्यतां जनकृपानैष्ठुर्यमुत्सृज्यताम् ॥ ४ ॥

क्षुधारूपी रोगके निवारणके लिये प्रतिदिन भिक्षारूपी औषधि का भक्षण करो यानी औषधिकी तरह भिक्षाऽन्नका सेवन करो। स्वादिष्ट भोजनकी कदापि अभिलाषा न करो। प्रारब्धवशसे जैसी भिक्षा मिल जाय उसीमें ही संतोष करो। शीत-उष्ण, मान-अपमान, सुख-दुःख, आदि द्वन्द्वोंको आनन्दसे निश्चिन्त भावसे सहन करो। भूलसे भी कभी व्यर्थ वाक्यका उच्चारण न करो। उदासीन् अवस्था, यानी असङ्ग निर्विकार शान्त अवस्थाको हरदम प्राप्त करो। और तमाम संसारके पदार्थोंसे राग-द्वेषका परित्याग करो।

एकान्ते सुखमास्यतां परतरे चेतः समाधीयताम् ।
पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यतां जगदिदं तद्बाधितं दृश्यताम् ॥
प्राक्कर्म प्रविलाप्यतां चितिबलान्नाप्युत्तरैः श्लिष्यताम् ।
प्रारब्धं त्विह भुज्यतामथ परब्रह्मात्मना स्थीयताम् ॥ ५ ॥

एकान्त, पवित्र, शान्त स्थानमें बड़ी ही प्रसन्नताके साथ बैठो। उस सच्चिदानन्द सर्वात्मा नारायण-तत्त्वमें अपने चित्तको स्थिर करो। ऊपर-नीचे, भीतर-बाहर, सभी दिशाओंमें ठसा-ठस परिपूर्ण उस एकमात्र पूर्णात्मा ब्रह्मका ही अनुभव करो। नाम रूपात्मक जगत्को

मिथ्या कल्पित समझकर उसका उस अधिष्ठान ब्रह्मतत्त्वमें बाध कर दो। प्रारब्ध-कर्मका लय करो, यानी प्रारब्धकर्मसे होनेवाला सुख-दुःख रूपी भोगका स्मरण ही न होने दो। निर्मल तत्त्वज्ञान के प्रभावसे सञ्चित एवं क्रियमाण कर्मोंका संश्लेष (सम्बन्ध) न होने दो। आनन्दसे प्रारब्धका भोग भोगो। और सदा सर्वथा अपने आत्माकी परब्रह्ममय स्थितिका सम्पादन करो।

यः श्लोकपञ्चकमिदं प्रपठन् मनुष्यः,
संचिन्तयत्यनुदिनं स्थिरतामुपेत्य।
तस्याशु संसृतिदवानलतीव्रघोर,
तापः प्रशान्तिमुपयाति चितिप्रसादात्॥

जो कोई सज्जन, आचार्य श्रीशङ्कर स्वामीप्रणीत इन पांच श्लोकोंका बड़े प्रेमसे पाठ करता है, और प्रतिदिन चित्तकी एकाग्रताके साथ उनके अर्थोंका चिन्तन करता है। शुद्ध चेतन परब्रह्म की विमल कृपासे उसके संसाररूपी दावानलसे पैदा होनेवाले आध्यात्मिक आदि, तीव्रतर तापोंकी शान्ति हो जाती है।

॥ इति उपदेशपञ्चक ॥

शिव-स्तुति

(शिवानन्दलहरीके कुछ श्लोक)

गलन्ती शम्भो ! त्वच्चरितसरितः किल्विषरजो,
दलन्ती धीकुल्यासरणिषु पतन्ती विजयताम् ।
दिशन्ती संसारभ्रमणपरितापोपशमनं,
वसन्ती मच्चेतोह्रदभुवि शिवानन्दलहरी ॥ १ ॥

हे शम्भो ! यह 'शिवानन्दलहरी' (श्रीशिव-स्तुतिरूप आनन्दकी लहर) आपके विमल-चरित्ररूपी अगाध नदीसे निकलकर, आपके प्रेमी-भक्तोंके पाप-पङ्कका प्रक्षालन करती हुई, तथा संसार-रूपी विकट-अरण्यके जन्म-मरणरूपी भ्रमणसे होनेवाले महासन्ताप को शान्त करती हुई, मेरी बुद्धिरूपी कुल्या (छोटी नहर) में से होती हुई, मेरे हृदयरूपी ह्रद (सरोवर) में प्रवेशकर सदाके लिये उसीमें स्थिर होकर महानन्दको देती हुई, वहाँ ही वर्तमान रहे ।

प्रभुस्त्वं दीनानां खलु परमबन्धुः पशुपते !,
प्रमुख्योऽहं तेषामपि किमुत बन्धुत्वमनयोः ।
त्वयैव क्षन्तव्याः शिव ! मदपराधाश्च सकलाः,
प्रयत्नात् कर्तव्यं मदवनमियं बन्धुसरणिः ॥ २ ॥

हे पशुपते ! यानी जीवरूप पशुओंके स्वामी ! आप दीनोंके नाथ एवं दीनोंके असली बन्धु हैं, और मैं दीनोंका सरदार महा-

दीन हूँ, आपका और मेरा क्या ही अच्छा सम्बन्ध बना है, मैं दीन तो आप दीनबन्धु। बन्धुका कर्तव्य है कि—वह अपने सम्बन्धीको तमाम बंन्धनोंसे मुक्त करके सुखी करे। इसलिये हे शिव! क्या आप मेरे तमाम अपराधोंको क्षमा कर इस संसार-सागरसे मेरी रक्षा नहीं करेंगे? अवश्य ही करेंगे। अन्यथा आप अपने कर्तव्यसे च्युत होंगे और आपके 'दीनबन्धु' नाम पर कलङ्क लगेगा।

उपेक्षा नो चेत् किं न हरसि भवद्धयानविमुखां,
दुराशाभूयिष्ठां विधिलिपिमशक्तो यदि भवान्।
शिरस्तद्वैधात्रं ननु खलु सुवृत्तं पशुपते!
कथं वा निर्यत्नं करनखमुखेनैव लुलितम्॥ ३॥

हे पशुपते! आप शीघ्र ही मेरी रक्षा क्यों नहीं करते? इससे तो यही निश्चय होता है कि—आप मेरी उपेक्षा कर रहे हैं; इसलिये मेरी विनम्र-प्रार्थना सुनते ही नहीं हैं। नहीं तो भला अब तक मेरी ऐसी दुर्दशा क्यों कर होती? यदि आप कहे कि—भाई! मैं क्या करूँ, विधाताने तेरे भालमें ऐसा ही लिखा है कि—यह मेरे (शिवजीके) ध्यानसे विमुख रहेगा, और सांसारिक विषय-भोगोंकी दुराशाओंसे पूर्ण जीवन व्यतीत करेगा। अच्छा? भगवन्! मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ कि—क्या आप विधाताके लेखको मेट नहीं सकते? आप तो कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ महेश्वर हैं, ब्रह्मा, विष्णु आदि बड़े-बड़े प्रभावशाली देवता भी आपके इशारे-

मात्रसे कठपुतलियाँकी तरह नाचते फिरते हैं, फिर क्या मुझ दीनके लिये इतना भी नहीं कर सकते ? अन्यथा आप फ़जूल दीनबन्धु क्यों कहलाते हैं ? कह दो कि—मैं दीनबन्धु नहीं हूँ, बस ! इतनेसे ही सब फैसला निपट जायगा । यदि आप कहें कि—मैं क्या करूँ, ब्रह्माजीके सामने मेरा कुछ चलता ही नहीं, तो मैं आपसे पूछता हूँ कि—क्या आप उस घटनाको भूल गये ? जिस समय ब्रह्माजीका पाँचवा मुख, आपसे बहुत ही बढ़कर अनापसनाप बातें कर रहा था, आपने बातकी बातमें अपने नखके अग्रभागसे ही उस मुखको तोड़-मरोड़ कर फेंक दिया था। इस प्रकार बेचारे ब्रह्माजी चतुरानन ही रह गये जो कि—आपकी बराबरी करने चले थे 'चौबेजी गये थे छब्बेजी होनेके लिये रह गये दुब्बेजी ही' इसलिये बस ! अब इस प्रकारकी सब बहानेबाजी रहने दीजिये, मैं आपको सहजमें ही छोड़नेवाला नहीं हूँ एवं आपकी बहानेबाजी माननेवाला भी नहीं हूँ, आपको मेरा उद्धार अवश्य ही करना होगा ।

करोमि त्वत्पूजां सपदि सुखदो मे भव विभो !
विधित्वं विष्णुत्वं दिशसि खलु तस्याः फलमिति ।
पुनश्च त्वां द्रष्टुं दिवि भुवि वहन् पक्षिमृगता,
मदृष्ट्वा तत्खेदं कथमिह सहे शङ्कर ! विभो ! ॥ ४ ॥

हे विभो ! हे शङ्कर ! मैं आपकी श्रद्धाभक्तिपूर्वक निरन्तर पूजा करता हूँ । उस अपनी पूजाका फल मैं आपसे यही चाहता हूँ

कि–आप मुझे अपने चरणकमलोंमें रखकर सदाके लिये सुखी करें, यानी आप अपने सुखप्रद चरणोंसे मुझे कभी अलग न करें। आपके चरणोंसे दूर रहकर मैं और तो क्या, ब्रह्मा एवं विष्णुका पद भी नहीं चाहता, क्योंकि ब्रह्मा और विष्णुको भी आपको ढूँढनेके लिये क्रमशः हंस और वराहका रूप धारण करना पड़ा था, फिर भी वे आपका पता न पा सके। वह ब्रह्मा और विष्णुका पद मेरे लिये किस कामका ? मुझे ऐसा बड़प्पन नहीं चाहिये, कि–जिसमें रह कर आपसे वियोग हो। अतः हे प्रभो ! मैं तो छोटे-से-छोटा होकर आपके विमल-चरणोंमें पड़ा रहना चाहता हूँ, मैं आपका वियोग किसी प्रकारसे भी सह नहीं सकता, इसलिये कृपया मुझे वही स्थान दीजिये, जिससे मैं कृतार्थ हो जाऊँ।

करस्थे हेमाद्रौ गिरिश ! निकटस्थे धनपतौ,
गृहस्थे स्वर्भूजामरसुरभिचिन्तामणिगणे।
शिरःस्थे शीतांशौ चरणयुगलस्थेऽखिलशुभे,
कमर्थं दास्येऽहं भवतु भवदर्थं मम मनः ॥ ५ ॥

हे गिरिश ! स्वर्णगिरि (सोनेका पहाड़-सुमेरु) आपके समीप ही है, यानी आपके करतलगत है, इसलिये आपको सोनेकी क्या परवाह ? कुछ नहीं। देवताओंके खज़ानची-कुबेरजी जो सबवित्ताधिपति हैं, वे तो आपके बगलमें ही-अलकापुरीमें रहते हैं, जब धनपति आपके पड़ोसी हैं और आपके सेवक भी हैं, तब

आपको धनकी क्या कमी रह सकती है ? जब चाहा, उनसे मंगवा लिया । सर्वाभिष्टप्रद कल्पवृक्ष, कामधेनु और चिन्तामणियोंका ढेर तो आपके घरमें ही सदा मौजूद रहता है, क्योंकि ऋद्धि एवं सिद्धि आपकी पुत्र-वधू हैं, वे जब चाहें एक क्षणमेंही दुनियाभरका सामान लाकर जुटा सकती हैं, आपके इशारे भरकी देरी है । सुधाकर (अमृतका खजाना) जो चन्द्रमा है, वह सदा आपके मस्तकपर ही रहता है, और आपके चरणयुगल समस्त कल्याणोंके धाम हैं । ऐसी दशामें आपको किसीभी वस्तुका अभाव नहीं हो सकता, जिसकी मैं आपको भेंट करके पूर्ति कर सकूँ । हाँ, मेरे पास मनके सिवाय और कोई वस्तु है भी नहीं, अतः आप कृपाकर इसको स्वीकार कीजिये, इसीसे मैं अपनेको कृतार्थ समझूँगा ।

सारूप्यं तव पूजने शिव ! महादेवेति संकीर्तने,
सामीप्यं शिवभक्तिधुर्यजनतासाङ्गत्यसम्भाषणे ।
सालोक्यं च चराचरात्मकतनुध्याने भवानीपते !,
सायुज्यं मम सिद्धमत्र भवति स्वामिन् ! कृतार्थोऽस्म्यहम् ॥ ६ ॥

हे भवानी (पार्वती) पते ! हे स्वामिन् ! मुझे सारूप्य, सामीप्य, सालोक्य एवं सायुज्य इन चार प्रकारकी मुक्तियोंमें से एक भी नहीं चाहिये; क्योंकि ये चारों ही मुझे आपकी कृपासे प्राप्त हैं जब मैं प्रेम-पूर्वक आपका षोडशोपचारसे पूजन करता हूँ, उस समय मेरी इन्द्रियाँ तदाकार होजाती हैं, इसलिये मुझे अनायाससे

आपको धनकी क्या कमी रह सकती है ? जब चाहा, उनसे मंगवा लिया । सर्वाभिष्टप्रद कल्पवृक्ष, कामधेनु और चिन्तामणियोंका ढेर तो आपके घरमें ही सदा मौजूद रहता है, क्योंकि ऋद्धि एवं सिद्धि आपकी पुत्र-वधू हैं, वे जब चाहें एक क्षणमेंही दुनियाभरका सामान लाकर जुटा सकती हैं, आपके इशारे भरकी देरी है। सुधाकर (अमृतका खजाना) जो चन्द्रमा है, वह सदा आपके मस्तकपर ही रहता है, और आपके चरणयुगल समस्त कल्याणोंके धाम हैं। ऐसी दशामें आपको किसीभी वस्तुका अभाव नहीं हो सकता, जिसकी मैं आपको भेट करके पूर्ति कर सकूँ । हाँ, मेरे पास मनके सिवाय और कोई वस्तु है भी नहीं, अतः आप कृपाकर इसको स्वीकार कीजिये, इसीसे मैं अपनेको कृतार्थ समझूँगा ।

सारूप्यं तव पूजने शिव ! महादेवेति सङ्कीर्तने,
सामीप्यं शिवभक्ति धुर्यजनता साङ्गत्यसम्भाषणे ।
सालोक्यं च चराचरात्मकतनुध्याने भवानीपते !,
सायुज्यं ममसिद्धमत्र भवति स्वामिन् ! कृतार्थोऽस्म्यहम् ॥ ६ ॥

हे भवानी (पार्वती) पते ! हे स्वामिन् ! मुझे सारूप्य, सामीप्य, सालोक्य एवं सायुज्य इन चार प्रकारकी मुक्तियोंमें से एक भी नहीं चाहिये; क्योंकि ये चारों ही मुझे आपकी कृपासे प्राप्त हैं जब मैं प्रेम-पूर्वक आपका षोडशोपचारसे पूजन करता हूँ, उस समय मेरी वृत्तियाँ तदाकार होजाती हैं, इसलिये मुझे अनायाससे

सारूप्य मुक्तिका सुख अनुभूत होता है। कहा भी है—देवो भूत्वा यजेद्देवम्' अर्थात् देवमें तदाकार होकर देव पूजा करनी चाहिये। एवं जब मैं मस्त होकर आपके परमपवित्र नामोंका संकीर्तन करने लगता हूँ, उस समय मुझे सामीप्य-मुक्तिका आनन्द मिल जाता है। एवं जिस समय मैं शिव-भक्तोंकी मण्डलीमें बैठकर आपकी चर्चा, और आपका गुणानुवाद करता हूँ, उस समय मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि—मैं महाकैलासमें बैठा हूँ, इसलिये मुझे सालोक्य मुक्तिका भी आनन्द मिल जाता है। और जिस समय मैं आपके चराचरमय विराट् स्वरूपका ध्यान करता हूँ, उस समय मैं आपसे अपनेको अलग नहीं पाता, यानी आपके ही व्यापक स्वरुपमें अपनेको अभिन्नरूपसे समाया हुआ देखता हूँ, उस समय मैं साक्षात् सायुज्य-सुखका अनुभव करने लगता हूँ। तात्पर्य यह है कि—आपकी पूजा, ध्यान, कीर्तन एवं गुणानुवादमें मुझे जो अलौकिक परमानन्द मिलता है, उसकी तुलना मुक्तिके आनन्दसे भी नहीं हो सकती, सांसारिक-सुखकी तो बात ही क्या? इस प्रकार जब मैं एक ही शरीरसे चारों प्रकारकी मुक्तियोंका सुख लूट रहा हूँ, तब मैं उन मुक्तियोंको लेकर क्या करूँ? इसलिये आपके सच्चे भक्त आपकी भक्तिको छोड़ कर मुक्ति नहीं चाहते।

नालं वा परमोपकारकमिदं त्वेकं पशूनां पते !
पश्यन् कुक्षिगतांश्चराचरगणान् बाह्यस्थितान् रक्षितुम्।

सर्वामर्त्यपलायनौषधमतिज्वालाकरं भीकरं,
निक्षिप्तं गरलं गले न गलितं नोद्गीर्णमेव त्वया ॥ ७ ॥

हे पशुपते ! आपकी दयालुताकी महिमा अपार है। समुद्रके मन्थनसे निकले हुए कालकूट-हलाहल विषकी प्रलयंकरी ज्वालाओंसे भयभीत होकर जब देवता लोग आपके शरणमें आये, तब आप दयापरवश हो, उस उग्रविषको बड़ी प्रसन्नतासे पीगये। इस प्रकार उस विषको आप पी तो गये, परन्तु उसे अपने मुखमें रखनेके साथ ही आपको अपने उदरमें रहे हुए चराचरविश्वका ध्यान आया, उस समय आप विचारने लगे कि–जिस विषकी भयङ्कर ज्वालाओंको देवतालोग भी नहीं सह सके, उसे मेरे उदरस्थ-जीव कैसे सह सकेंगे? ऐसा विचार कर आपने उस विषको अपने गलेमें ही रोक लिया, नीचे नहीं उतरने दिया, इसीसे तो आप 'नीलकण्ठ' कहलाते हैं। इस प्रकार आपने उस भयङ्कर विषसे देवताओंकी नहीं, किन्तु समस्त चराचरविश्वकी रक्षा की, इसलिये तो विद्वान् लोग आपको 'भूत-भावन' कहते हैं। धन्य है आपकी परदुःखकारताको, एवं धन्य है आपके परमपरोपकारको।

नित्यं योगिमनः सरोजदलसञ्चारक्षमस्त्वत्क्रमः,
शम्भो! तेनकथं कठोरयमराड्वक्षःकवाटक्षतिः।
अत्यन्तं मृदुलं त्वदङ्घ्रियुगलं हा! मे मनश्चिन्तय-
त्येतल्लोचनगोचरं कुरु विभो! हस्तेन संवाहये ॥ ८ ॥

हे शम्भो ! कहाँ तो आपके अत्यन्त कोमल चरणयुगल, जो योगियोंके हृदयकमलोंमें सदा रमण करते रहते हैं, और कहाँ यम-राजका कठोर वज्रोपम वक्षःस्थल, जिसे आपने अपने उन चरणोंके प्रहारसे भेदन किया था। इसलिये मैं सोच रहा हूँ कि—उस कर्कश आघातसे आपके चरणोंको जरूर गहरी चोट आयी होगी, कृपया उन चरणोंका मुझे दर्शन देकर उन्हें मुझे सुपुर्द कीजिये, मैं उन आपके चरणोंको हाथसे पलोट कर ठीक कर दूँ।

पश्यत्येष जनिं मनोऽस्य कठिनं तस्मिन्नटानीतिमद्-
रक्षायै गिरिसीम्नि कोमलपदन्यासः पुराऽभ्यासितः।
नो चेद्दिव्यगृहान्तरेषु सुमनस्तल्पेषु वेद्यादिषु,
प्रायःसत्सु शिलातलेषु नटनं शम्भो ! किमर्थं तव ॥ ९ ॥

हे शम्भो ! आपने अपनी सर्वज्ञताके बलसे इस बातका पता लगा लिया था कि—मेरा एक भक्त अमुक समयमें जन्म लेगा, और उसकी वज्र-तुल्य कठोर हृदय-भूमिमें मुझको विहार एवं पदसञ्चार करना होगा, इसलिये आपने युगों पहिले कैलास-शिखरकी पथरीली कर्कश-भूमि पर हल्के-हल्के कोमल पदन्यास (कदम) रखकर नृत्य करनेका अभ्यास किया है। अतः आपको कठोर-भूमिपर पादप्रहार करनेके लिये कुछ कठिनाई नहीं है। नहीं तो भला, दिव्य मणिमय भवनके सुकोमल फर्श, मखमली गद्दों तथा फूलोंकी सेजको छोड़कर

पथरीली जमीन पर घूमनेका किसको शौक होगा ? धन्य है आप की भक्तवत्सलताको एवं दूरदर्शिताको ।

अशनं गरलं फणी कलापो,
वसनं चर्म च वाहनं महोक्षः ।
मम दास्यसि किं किमस्ति शम्भो !,
तव पादाम्बुजभक्तिमेव देहि ॥ १० ॥

हे शम्भो ! मैं आपसे क्या मागूँ ? आपके पास देने लायक है ही क्या जिसे आप मुझे देंगें ? खाते तो हैं आप जहर, कभी मुट्ठी भर भाँग भकोस ली, कभी आक-धतूरा चबा लिया, जिसके खानेसे मनुष्य अव्वल तो बचे ही नहीं, और यदि किसी तरह बच भी जाय, तो पागल हुए बिना कदापि न रहे । फिर भला आपसे कोई खाने की चीज तो क्या माँगे ? भोजनके बाद दूसरा नम्बर आता है वस्त्र का। उसके लिये आप तो दिगम्बर प्रसिद्ध ही हैं, कभी कोई विष्णु आदि देवता आपसे मिलने आगये तो भले ही शर्मके मारे चमड़ेका टुकड़ा लंगोटीकी जगह लपेट लिया, नहीं तो वही आप नङ्ग-धड़ङ्ग घूमते रहते हैं, इसलिये आपसे कोई वस्त्र कैसे माँग सकता है ? नहीं माँग सकता । आपने गहनेके बदले साँपोंको धारण कर रक्खे हैं, जिन्हें धारण करनेकी तो बात ही कौन कहे, दर्शन होते ही होश-हवास कूच कर जाते हैं, किसी तरह प्राण बचानेकी चिन्ता होती है, ऐसी दशामें कोई अभागा ही होगा जो आपसे गहनोंके लिये

सवाल करेगा ? सवारी आपकी साँड़ है, जिसके पास जानेमें ही भय मालूम होता है कि–कहीं वह सींग न भोंक दे। तात्पर्य यह है कि–आपके पास सांसारिक वस्तु कोई भी ऐसी नहीं है, जो आप किसीको दे सकें इसलिये मैं आपसे केवल एक ही वस्तु माँगता हूँ, जिसे देनेमें आपको कभी आनाकानी हो ही नहीं सकती, वह है आपके चरणारविन्दकी अनन्य एवं अनपायिनी भक्ति। आशा है कि–मेरे इस सवालको आप अवश्य पूरा करेंगे और आप अपनी भक्ति से मुझे वञ्चित नहीं रक्खेंगे।

॥ इति शिव स्तुति ॥

शिव-पञ्चाक्षर स्तोत्र

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय,
भस्माङ्गरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय,
तस्मै नकाराय नमः शिवाय ॥ १ ॥

जिन शङ्कर भगवान्ने नागों (सर्पों) के इन्द्र (अधिपति) शेष भगवान्को हाररूपसे धारण किया है। जिनके सूर्य चन्द्र एवं अग्निरूपी तीन नेत्र हैं, अतएव भगवान् शिव 'त्र्यम्बक' कहलाते हैं। जिनके शशि-शुभ्र मनोहर गौर शरीरमें हीरा-माणिकके बदले

भस्मरूपी विभूति सुशोभित हो रही है, जो ईश्वरोंके भी ईश्वर महेश्वर हैं, जो तीन कालमें यानी सर्वदा एकरस-विशुद्ध रहते हैं, एवं जिनने मनोहर कौशेय (रेशमी) पट्टके बदले दिशारूपी वस्त्र धारण किये हैं, उन 'न' रूपी भगवान् शिवको यह मेरा श्रद्धाभक्तियुक्त नमस्कार है ।

मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय,
नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय ।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय,
तस्मै मकाराय नमः शिवाय ॥ २ ॥

जो भगवान् महादेव, मन्दाकिनी गंगाके पवित्र-जलसे एवं मलयाचलके पवित्र चन्दनसे भक्तोंके द्वारा सदा पूजित हैं । जो नन्दीश्वर प्रमथनाथ आदि गणोंके अधिपति हैं एवं निखिल ब्रह्माण्डके महेश्वर यानी नियन्ता हैं । जो मन्दार यानी कल्पवृक्ष या धतुराके पुष्पोंसे, तथा विविध रंगबेरङ्गी सुन्दर पुष्पोंसे, श्रद्धाभक्तिपूर्वक बड़े बड़े देव मनुष्यादिके द्वारा निरन्तर पूजित हैं, ऐसे 'म' रूपी श्रीशङ्कर भगवान्को यह मेरा श्रद्धा-भक्तियुक्त नमस्कार है ।

शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द-
सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय ।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय,
तस्मै शिकाराय नमः शिवाय ॥ ३ ॥

जो कल्याणस्वरूप हैं, जो सूर्यके समान अतितेजस्वी शंकर भगवान् भगवती श्रीपार्वतीजीके मुखकमलको सदा प्रफुल्लित करते हैं। सती उमाके मानरक्षार्थ जो दक्षप्रजापति जैसे अतिप्रभावशालीके यज्ञको ध्वंस करनेवाले हैं, जो क्षीर समुद्रके मन्थनसे निकले हुए हलाहल विषको कण्ठमें धारण करनेवाले 'श्रीनीलकण्ठ' हैं। एवं जिनकी ध्वजामें स्ववाहन-वृषभका चिन्ह है। उन 'शि' रूपी भगवान् सौम्य महादेवको यह मेरा श्रद्धाभक्तियुक्त नमस्कार है।

वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्य,
मुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय,
तस्मै वकाराय नमः शिवाय ॥ ४ ॥

जिस शंकर भगवान्का परमपवित्र ललाट, वसिष्ठ, अगस्त्य, गौतम प्रभृति श्रेष्ठ ऋषि-मुनियोंके द्वारा एवं इन्द्रादि देवोंके द्वारा सदा समर्चित है। जिनके चन्द्र, सूर्य एवं अग्निरूपी तीन नेत्र ह, उन 'व' रूपी भगवान् श्रीशिवको यह मेरा श्रद्धाभक्तियुक्त नमस्कार है।

यक्षस्वरूपाय जटाधराय,
पिनाकहस्ताय सनातनाय।
देवाधिदेवाय निरञ्जनाय,
तस्मै यकाराय नमः शिवाय ॥ ५ ॥

जो भगवान् शिव, केनोपनिषद् प्रसिद्ध, अग्न्यादि गर्वनाशक पूजनीयतम यक्षस्वरूप धारी हैं। जिनने पिशंगवर्णकी मनोहर जटाएँ धारण की हैं, जिनके हाथमें 'पिनाक' नामका विशाल-भव्य धनुष है, जो अचल-सनातन स्वरूप हैं, जो देवोंके देव-महादेव हैं एवं जो मायारूपी अञ्जनसे अतीत हैं, उन 'य' रूपी भगवान् शिवको यह मेरा श्रद्धाभक्तियुक्त नमस्कार है।

पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं, यः पठेच्छिव सन्निधौ।
शिवलोकमवाप्नोति, शिवेन सह मोदते॥

इस परमपवित्र पञ्चाक्षर स्तोत्रको जो श्रद्धालु भक्त भगवान् श्रीशंकरकी प्रतिमाकी सन्निधिमें प्रतिदिन पढ़ता है, वह निःसन्देह शिवलोक यानी महाकैलासको प्राप्त होता है, और वहाँ वह श्रीशिव के साथ सदा आनन्दका उपभोग करता है।

॥ इति शिव-पञ्चाक्षर स्तोत्र ॥

हरिमीडे स्तोत्र

(मत्तमयूर छन्द) *

स्तोष्ये भक्त्या विष्णुमनादिं जगदादिं,
यस्मिन्नेतत्संसृतिचक्रं भ्रमतीत्थम्।
यस्मिन् दृष्टे नश्यति तत्संसृतिचक्रं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१॥

मैं (आचार्य श्रीशंकर स्वामी) समस्त विश्वका कारण, अनादि, व्यापक-विष्णु परमात्माकी विशुद्ध भक्तिपूर्वक स्तुति करूँगा। जिस अधिष्ठान स्वरूप विष्णुमें यह कष्टप्रद कल्पित संसार-चक्र कर्तृत्व-भोक्तृत्वादि विविधरूपसे परमार्थमें न होता हुआ भी अनादि-कालसे भ्रमण करता है। जिस सच्चिदानन्द विष्णुका साक्षात्कार होनेपर यह संसारचक्र समूल नष्ट होजाता है। इस संसारचक्रके कारणरूप अज्ञानकी निवृत्तिरूप† उस विष्णु भगवान्की मैं स्तुति करता हूँ।

---

* इस छन्दमें चार और नव अक्षरपर विश्राम होता है। नव अक्षरमें भी पाँच और चार अक्षरोंके मध्यमें कुछ विश्राम लेना चाहिये।

† 'अधिष्ठानतवशेषोहि नाशः कल्पितवस्तुनः' अज्ञानादि कल्पित वस्तुका नाश अधिष्ठान ब्रह्मस्वरूप होता है, अधिष्ठानसे पृथक् नहीं होता।

यस्यैकांशादित्थमशेषं जगदेतत्,
प्रादुर्भूतं येन पिनद्धं पुनरित्थम्।
येन व्याप्तं येन विबुद्धं सुखदुःखै,
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२॥

जिस मायाशक्ति-युक्त विष्णु परमात्माके कल्पित एक अंशसे, कर्तृत्वादि विविध अनर्थविशिष्ट यह नामरूपात्मक संसार उत्पन्न हुआ है। और जिस अन्तर्यामी नारायणसे इस संसारकी विचित्र व्यवस्था नियुक्त की गई है। जिससे यह तमाम जगत् व्याप्त है, यानी जो निखिल विश्वमें बाहर-भीतर ओत-प्रोत होकर परिपूर्णरूपसे स्थित है। जिससे यह संसार, सुखदुःखादिके विचित्र अनुभव द्वारा भासित हो रहा है। उस संसारके कारण अज्ञानकी निवृत्तिरूप, या ब्रह्मविद्याद्वारा अज्ञानके नाश करनेवाले विष्णु भगवान्की मैं स्तुति करता हूँ।

सर्वज्ञो यो यश्च सर्वस्सकलो यो,
यश्चानन्दोऽनन्तगुणो यो गुणधामा।
यश्चाव्यक्तो व्यक्तसमस्तः सदसद्य-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३॥

जो परमात्मा सर्वज्ञ, यानी सबको जानता है, सर्वरूप है, यानी सबमें परिपूर्ण है।

सर्वका उपादान एवं निमित्त कारण भी है, अखण्ड विशुद्धानन्द स्वरूप है, असंख्य कल्याण गुणोंसे युक्त है, त्रिगुणमयीमायाका अधिष्ठान है, अव्यक्त है यानी मन आदि इन्द्रियोंके अगोचर है, भोक्ता एवं भोग्यरूपसे विभक्त समष्टिव्यष्टयात्मक निखिल संसाररूप है, जो सत्य एवं असत्यरूप भी है अथवा मूर्तामूर्तरूप है, ऐसे संसारका कारण अज्ञानकी निवृत्तिरूप उस हरि भगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ।

यस्मादन्यन्नास्त्यपि नैवं परमार्थं,
दृश्यादन्यो निर्विषयज्ञानमयत्वात् ।
ज्ञातृज्ञानज्ञयविहीनोऽपि सदा ज्ञ—
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥४॥

जिस सच्चिदानन्द विष्णु परमात्मासे अन्य (भिन्न) आकशादि अनात्मवर्ग वस्तुगत्या नहीं है, इसलियें आकाशादि सभी पदार्थ, वास्तवमें परमार्थ-सत्य नहीं हैं, किन्तु प्रतीतिमात्र मिथ्या हैं। और वह विष्णु, निर्विषय निरतिशय विशुद्ध ज्ञान स्वरूप होनेके कारण दृश्यमान नामरूपात्मक जगत्‌से भिन्न हैं, असंग निर्विकार हैं। ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेयरुपी त्रिपुटीसे रहित होनेपर भी जो मायाशक्तिसे सदा सबको जानता है, ऐसे संसारका कारण अज्ञानके नाशक विष्णुभगवान्‌ की मैं स्तुति करता हूँ।

आचार्येभ्यो लब्धसुसूक्ष्माच्युततत्त्वा,
वैराग्येणाभ्यासबलाच्चैव द्रढिम्ना ।
भक्त्यैकाग्रध्यानपरा यं विदुरीशं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥६॥

आचार्य-गुरूओंके अनुग्रहसे जिनने अविनाशी अतिसूक्ष्म विष्णुतत्त्वके परमार्थिक स्वरूपको प्रत्यक्ष प्राप्त किया है । वैराग्य एवं अभ्यासके प्रभावसे तथा दृढ़ अनन्य भक्तिके बलसे जो उस तत्त्वके एकाग्रध्यानमें तत्पर हुए हैं, ऐसे महानुभाव ईश्वरके वास्तविक स्वरूपको 'हस्तामलकवत्' साक्षात् जानते हैं, ऐसे संसार-कारण अज्ञानके नाशक विष्णुभगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ ।

प्राणानायम्योमिति चित्तं हृदि रुद्ध्वा,
नान्यत्स्मृत्वा तत्पुनरत्रैव विलाप्य ।
क्षीणे चित्ते भादृशिरस्मीति विदुर्यं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥७॥

योगीलोग, प्रथम अपनी चक्षुरादि इन्द्रियोंको अपने अपने शब्दादि विषयोंसे रोककर 'ॐ' ऐसे प्रणव मन्त्रका उच्चारण करते हुए संकल्प-विकल्परूप मनको हृदयमें यानी हृदयाकाशरूप ब्रह्ममें स्थिर करते हैं, और पश्चात् अन्य किसी दृश्य-प्रपञ्चका स्मरण नहीं करते हुए उस मनको सुतरां व्यापक-ब्रह्मतत्त्वमें लीन कर देते हैं, फिर उस मनके क्षीण होने पर 'स्वप्रकाशविज्ञानघन विष्णु मैं

ही हूँ' ऐसा दृढ़निश्चय करते हैं, ऐसे संसार-कारण अज्ञानके नाशक विष्णु भगवान्की मैं स्तुति करता हूँ ।

यं ब्रह्माख्यं देवमनन्यं परिपूर्णं,
हृत्स्थं भक्तैर्लभ्यमजं सूक्ष्ममतर्क्यम् ।
ध्यात्वाऽऽत्मस्थं ब्रह्मविदो यं विदुरीशं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ७ ॥

जिस तत्त्वको ब्रह्मवेत्ता महानुभाव स्वप्रकाश, अन्यवस्तु (द्वैत-प्रपञ्च) से रहित, तमाम देशकालमें परिपूर्ण, समस्त प्राणियोंके हृदयमें साक्षी द्रष्टारूपसे वर्तमान, प्रेमी-भक्तोंसे प्राप्त करने योग्य, जन्मरहित, सूक्ष्म यानी इन्द्रियोंके अगोचर, केवल तर्कोंसे नहीं जानने योग्य, ब्रह्मनामसे पुकारते हुए, अपने ही आत्मामें अभेदरूपसे स्थित उस तत्त्वका ध्यान करते हुए अपरोक्षरूपसे जानते हैं, ऐसे संसारके कारण अज्ञानकी निवृत्ति करनेवाले विष्णु भगवान्की मैं स्तुति करता हूँ ।

मात्रातीतं स्वात्मविकाशात्मविबोधं,
ज्ञेयातीतं ज्ञानमयं हृद्युपलभ्यम् ।
भावग्राह्यानन्दमनन्यं च विदुर्यं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ८ ॥

तत्त्वदर्शीमहानुभाव; चक्षुरादि इन्द्रियोंसे अतीत यानी उनसे अग्राह्य, आत्मस्वरूपके प्रकाशसे प्रकाशवाला शुद्ध-एकाग्र अन्तःकरण

से लक्षणावृत्ति द्वारा जानने योग्य, शक्ति-वृत्तिसे जाननेके लिये अयोग्य, स्वयंप्रकाश-ज्ञानस्वरूप, सूक्ष्म संस्कृत-बुद्धिमें साक्षात् प्रत्यक्ष अनुभवके योग्य, परम प्रेमरूपी भक्तिके द्वारा परमानन्दमयरूपसे ग्रहण करने योग्य, अन्यभाव (द्वैतभाव) से रहित अखण्ड अद्वितीय, ऐसे आत्मस्वरूप श्रीविष्णुको जानते हैं, उस संसारका कारण अज्ञानरूप-अन्धकारके विनाश करनेवाले विष्णु भगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ ।

यद्यद्वेद्यं वस्तु सतत्त्वं विषयाख्यं,
तत्तद् ब्रह्मैवेति विदित्वा तदहं च ।
ध्यायन्त्येवं यं सनकाद्या मुनयोऽजं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ९ ॥

संसारमें जो जो विषयभूत दृश्य वस्तु हैं, वे सभी अस्ति-भाति-प्रियरूपसे अधिष्ठान ब्रह्मस्वरूप ही हैं, यानी उस दृश्य प्रपञ्चका ब्रह्मतत्त्वसे पृथक् अस्तित्व नहीं है 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस प्रकार एक-अद्वय-अखण्डरूपसे ब्रह्मतत्त्वको जानकर 'वह ब्रह्म मैं ही हूँ' ऐसे जन्मरहित व्यापक विष्णुतत्त्वका सनकादि मुनिवृन्द निरन्तर ध्यान करते हैं, उस संसारका कारण अज्ञानरूपी अन्धकारको नष्ट करनेवाले विष्णु भगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ ।

यद्यद्वेद्यं तत्तदहं नेति विहाय,
स्वात्मज्योतिर्ज्ञानमयानन्दमवाप्य ।

तस्मिन्नस्मीत्यात्मविदो यं विदुरीशं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ १० ॥

जो जो अहंकार आदि दृश्य पदार्थ हैं, वे सब स्वस्वरूपसे (नामरूपसे) कल्पित होनेके कारण मैं सत्य अधिष्ठान आत्मा नहीं हूँ, यानी उस दृश्य वस्तुसे मैं पृथक् हूँ, इस प्रकार मिथ्या दृश्य पदार्थोंका बाध करके, एवं स्वयंज्योति विज्ञानघन स्वस्वरूप-भूत विशुद्धानन्दका प्रत्यक्ष अनुभव करके, आत्मज्ञानी महानुभाव, त्वंपदलक्ष्यार्थ आत्माके विषयमें प्रत्यक्षरूपसे 'वह आत्मा मैं हूँ' इस प्रकार तत्पदलक्ष्यार्थ, ईश्वर स्वरूपको आत्मासे अभिन्न करके साक्षात् अनुभव करते हैं, उस संसारके अज्ञानको नाश करनेवाले विष्णु भगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ ।

हित्वा हित्वा दृश्यमशेषं सविकल्पं,
मत्वा शिष्टं भाद्दशिमात्रं गगनाभम् ।
त्यक्त्वा देहं यं प्रविशन्त्यच्युतभक्ता,
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ११ ॥

अखण्ड-अविनाशी-विष्णुतत्त्वके चिन्तन करनेवाले प्रेमी भक्त-वृन्द, समस्त, विकल्प विशिष्ट, दृश्य-द्वैत प्रपञ्चको अच्छी तरहसे छोड़कर तथा अबाधितरूपसे एवं सर्वनिषेधावधिरूपसे अवशिष्ट (बचा हुआ) स्वप्रकाश, ज्ञानमात्र, आकाशकी भाँति स्वच्छ, असंग तथा व्यापक विष्णु-तत्त्वको जानकर, शरीर छोड़नेके बाद जिस विष्णु-

तत्त्वमें अभेदरूपसे लीन हो जाते हैं। उस संसारके अज्ञानको नाश करनेवाले विष्णुभगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ।

सर्वत्रास्ते सर्वशरीरी न च सर्वः,
सर्वं वेत्त्येवेह न यं वेत्ति च सर्वः।
सर्वत्रान्तर्यामितयेत्थं यमयन्य-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ १२ ॥

जो विष्णु परमात्मा, पृथिवी आदि सभी वस्तुओंमें वर्तमान है, तमाम विश्व जिसका शरीर है, जो सर्वरूप होता हुआ भी पृथक् है, जो सबको अच्छीतरहसे जानता है, परन्तु उसको कोई जान नहीं सकता। जो सबका नियमन करता हुआ अन्तर्यामी रूपसे सब जगह वर्तमान है, उस संसारके अज्ञानको नाश करनेवाले विष्णुभगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ।

सर्वं दृष्ट्वा स्वात्मनि युक्त्या जगदेतद्,
दृष्ट्वात्मानं चैवमजं सर्वजनेषु।
सर्वात्मैकोऽस्मीति विदुर्यं जनहृत्स्थं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ १३ ॥

इस निखिल विश्वको 'जड और चेतनका वस्तुगत्या कोई भी सम्बन्ध नहीं बन सकता' इत्यादि युक्तियोंसे अपने आत्मामें कल्पित जानकर और सर्वशरीरोंमें साक्षीरूपसे रहनेवाला, जन्मरहित एकही आत्माका अनुभवकर, 'मैंही एक अखण्ड, अद्वितीय सर्वात्मा हूँ'

इसप्रकार सर्वप्राणियोंकी बुद्धिमें सदा प्रत्यक्षरूपसे वर्तमान विष्णु-तत्त्वका विरक्त विद्वान् महानुभाव, अनुभव करते हैं। उस संसारके कारण अज्ञानका नाश करनेवाले विष्णुभगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ।

सर्वत्रैकः पश्यति जिघ्रत्यथ भुङ्क्ते,
स्प्रष्टा श्रोता बुध्यति चेत्याहुरिमं यम्।
साक्षी चास्ते कर्तृषु पश्यन्निति चान्ये,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१४॥

जो परमात्मा सर्वमें यानी ब्रह्मासे लेकर चिटीं पर्यन्त सर्व शरीरोंमें एकही वर्तमान है, वही परमात्मा, उपाधिके द्वारा देखता है, सूँघता है, खाता है, छूता है, सुनता है एवं जानता है, ऐसा अनुभवी विद्वान् लोग कहते हैं। तथा दूसरे विवेकी महानुभाव, वह परमात्मा शरीर इन्द्रिय आदिको प्रकाशित करता हुआ केवल साक्षी-द्रष्टा अकर्ता एवं अभोक्ता है, ऐसा कहते हैं। उस सांसारिक अज्ञानका विनाश करनेवाले विष्णुभगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ।

पश्यन् शृण्वन्नत्र विजानन् रसयन् सन्,
जिघ्रन् बिभ्रद्देहमिमं जीवतयत्थेम्।
इत्यात्मानं यं विदुरीशं विषयज्ञं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१५॥

भौतिक शरीरोंमें जीवरूपसे प्रवेश करके एवं उन शरीरोंको धारण करके जो परमात्मा इस संसारमें चक्षुसे देखता हुआ, कानसे

सुनता हुआ, जीभसे रस ग्रहण करता हुआ, नाकसे सूँघता हुआ और बुद्धिसे निश्चय करता हुआ, संसारके विविध धर्मोंका अनुभव करता है। इस प्रकार शब्दादि विषयोंका जाननेवाला जिस आत्मा को विद्वान् लोग ईश्वररूपसे जानते हैं। उस संसारके कारण अज्ञान का नाश करनेवाले विष्णु भगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ।

जाग्रद्दृष्ट्वा स्थूलपदार्थानथ मायां,
दृष्ट्वा स्वप्नेऽथापि सुषुप्तौ सुखनिद्राम्।
इत्यात्मानं वीक्ष्य मुदास्ते च तुरीये,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥ १६॥

जो आत्मा, जाग्रत्-अवस्थामें स्थूल-पदार्थोंको देखता है, स्वप्न में, निद्रारूपमायानिर्मित कल्पित हाथी, घोड़े आदि पदार्थोंको देखता है, सुषुप्ति अवस्थामें सुखयुक्त अज्ञाननिद्राका अनुभव करता है, तुरीय (समाधि) अवस्थामें अपने विशुद्ध स्वरूपका साक्षात्कार करके आनन्दित एवं कृतकृत्य होता है, उस संसारके अज्ञानकी निवृत्ति करने वाले आत्मस्वरूप विष्णु भगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ।

पश्यन् शुद्धोऽप्यक्षर एको गुणभेदान्,
नानाकारान् स्फाटिकवद्भाति विचित्रः।
भिन्नश्छिन्नश्चायमजः कर्मफलैर्यः,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥ १७॥

जो आत्मा, स्वतः सकल सांसारिक-धर्मोंसे रहित, अविनाशी, स्वयंप्रकाश एक अद्वितीय स्वरूप है, तथापि वह सत्त्व, रज एवं

तमोगुणके परिणाम-विशेषरूप उपाधियोंके द्वारा देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि अनेक रूपोंको धारण करता है, और कर्मोंके फलरूप सुख-दुःखोंके साथ कल्पित-तादात्म्य सम्बन्धद्वारा स्फटिककी तरह * चित्र-विचित्र यानी सुखीदुःखी, राजारङ्क आदि अनेक रूपोंसे प्रतीत होता है, उस संसारके अज्ञानरूपी अन्धकारकी निवृत्ति करनेवाले आत्मस्वरूप विष्णु भगवान्की मैं स्तुति करता हूँ ।

ब्रह्माविष्णू रुद्रहुताशौ रविचन्द्रा,
विन्द्रो वायुर्यज्ञ इतीत्थं परिकल्प्य ।
एकं सन्तं यं बहुधाहुर्मतिभेदात्,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ १८ ॥

विद्वान् लोग, जिस एकही परमात्माकी ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, पवन, यज्ञ आदि अनेकरूपोंसे कल्पना करके बुद्धिकी विचित्रतासे यानी उपासकोंकी रुचिभेदसे एक ही तत्त्वका अनेक प्रकारसे एवं अनेक नामोंसे निरूपण करते हैं, उस संसारके जीवोंके अज्ञानका नाश करनेवाले विष्णुभगवान्की मैं स्तुति करता हूँ।

---

* जैसे एक ही स्वच्छ स्फटिक (बिल्लोर) रङ्गविरङ्गे अनेक पुष्पोंके सन्निधानसे चित्रविचित्र एवं अनेककी तरह मालूम होती है, तद्वत् एक ही शुद्ध-आत्मा, अन्तःकरण आदि उपाधियोंके सम्बन्धसे विचित्र एवं अनेककी तरह भासित होता है ।

सत्यं ज्ञानं शुद्धमनन्तं व्यतिरिक्तं,
शान्तं गूढं निष्कलमानन्दमनन्यम् ।
इत्याहादौ यं वरुणोऽसौ भृगवेऽजं.
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ १६ ॥

जिस तत्त्वका 'सत्यस्वरूप यानी भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालमें एकरस, ज्ञानस्वरूप, अनन्त यानी त्रिविध परिच्छेद शून्य, पंचकोशसे भिन्न, शान्त स्वरूप यानी जन्ममरणादि एवं रागद्वेषादि तमाम विक्षेपोंसे रहित, गूढ़ यानी मनवाणीका अविषय, अवयवोंसे रहित, आनन्दस्वरूप, द्वैतरहित इत्यादि प्रकारसे तैत्तिरीय-उपनिषद् की आनन्द नामकी प्रथमवल्लीमें वरुणनामक ऋषिने, भृगुनामक अपने पुत्रको उपदेश किया था । उस संसारके अज्ञानको नाश करनेवाले अजन्मा विष्णु भगवान् की मैं स्तुति करता हूँ ।

कोशानेतान्पञ्चरसादीनतिहाय,
ब्रह्मास्मीति स्वात्मनि निश्चित्य दृशिस्थः ।
पित्रादिष्टो वेद भृगुर्यं यजुरन्ते,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ २० ॥

अपने पिता वरुण ऋषिके किये हुए तैत्तिरीय-उपनिषद्के उपदेशको सुनकर भृगुने विष्णु-तत्त्वको यथार्थ रीतिसे समझा । और वह अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय, इन पांच कोशोंको आत्मासे पृथक्-मिथ्या जानकर एवं उनसे विष्णु

स्वरूप आत्माको पृथक् असंग जानकर, 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस प्रकार दृढ निश्चय करके प्रकाश ज्ञानस्वरूप स्वात्मामें स्थिर हुआ। उस संसारके कारण अज्ञानका नाश करनेवाले विष्णु भगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ।

येनाविष्टो यस्य च शक्त्या यदधीनः,
क्षेत्रज्ञोऽयं कारयिता जन्तुषु कर्तुः।
कर्ता भोक्ताऽऽत्मात्र हि चिच्छक्त्याधिरूढः,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥ २१॥

जिस तत्त्वसे युक्त होकर, एवं जिस तत्त्वकी शक्तिद्वारा, और जिस तत्त्वके अधीन हुआ यह क्षेत्रज्ञ (शरीरको जाननेवाला) जीव, सब शरीरोंमें विविध कार्यको करनेवाले अन्तःकरणको करानेवाला यानी प्रेरक-नियन्ता होता है। और जिस विष्णु-तत्त्वकी मायारूपशक्तिसे युक्त होकर यह जीव, कर्ताभोक्तारूपसे संसारमें प्रसिद्ध होता है। उस संसारके कारण अज्ञानको नष्ट करनेवाले विष्णु भगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ।

सृष्ट्वा सर्वं स्वात्मतयैवेत्थमतर्क्यं,
व्याप्याथान्तः कृत्स्नमिदं सृष्टमशेषम्।
सच्च त्यच्चाभूत् परमात्मा स य एकः,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥ २२॥

जो परमात्मा एक अद्वितीय यानी सर्वजीवाभिन्न है, जिसने अनिर्वचनीय घटपट आदि समस्त संसारको संकल्पमात्रसे उत्पन्न कर के पश्चात् उत्पन्न किये हुए इस निखिल संसारके भीतर, स्वस्वरूपसे व्याप्त होकर जो वर्तमान है। तथा जो पृथ्वी, जल एवं तेजरूपसे प्रत्यक्ष और वायु एवं आकाशरूपसे परोक्ष हुआ है। उस संसारके अज्ञानको नाश करनेवाले विष्णु भगवान्की मैं स्तुति करता हूँ।

वेदान्तैश्चाध्यात्मिकशास्त्रैश्च पुराणैः,
शास्त्रैश्चान्यैः सात्वततन्त्रैश्च यमीशम्।
दृष्ट्वाऽथान्तश्चेतसि बुद्ध्वा विविशुर्यं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥ २३॥

कोई-कोई महानुभाव उपनिषदोंका, सांख्यादि आध्यात्मिक शास्त्रोंका, भागवत आदि पुराणोंका, नारदपांचरात्र आदि वैष्णव-तन्त्रोंका, एवं अन्यान्य धर्मशास्त्रोंका गुरुओंके द्वारा श्रवण मनन करके जिस परमात्माको जान सके हैं, और पश्चात् चित्तमें 'वह परमात्मा मैं हूँ' ऐसा साक्षात् स्वस्वरूपका अनुभव करके वे महानुभाव उस परमात्मामें अभेदरूपसे जलमें जलकी तरह समा गये हैं। उस संसार के कारण अज्ञानको नाश करनेवाले विष्णु भगवान्की मैं स्तुति करता हूँ।

श्रद्धाभक्तिध्यानशमाद्यैर्यतमानै,
र्ज्ञातुं शक्यो देव ! इहैवाशु य ईशः।

दुर्विज्ञेयो जन्मशतैश्चापि विना तैः,
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ २४ ॥

श्रद्धा, भक्ति, ध्यान और शम आदि साधनोंके द्वारा आत्म-ज्ञान प्राप्तिके लिये यत्न करनेवाले मुमुक्षुओंसे जो स्वप्रकाश परमेश्वर शीघ्र ही प्रत्यक्ष जाननेके लिये शक्य है । श्रद्धा आदि साधनोंके बिना जिसका साक्षात्कार सैकड़ों जन्मोंमें भी नहीं हो सकता है; उस संसारके अज्ञानको नाश करनेवाले विष्णु भगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ ।

यस्यातर्क्यं स्वात्मविभूतेः परमार्थं,
सर्वं खल्वित्यत्र निरुक्तं श्रुतिविद्भिः ।
तज्जादित्वादब्धितरंगाभमभिन्नं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ २५ ॥

जो स्वयं वास्तवमें एक-अद्वय होता हुआ भी मायासे अनेक-रूप होकर भासता है, जिसका परमार्थस्वरूप तर्कोंसे अगम्य है, 'यह जगत् निश्चय करके ब्रह्मरूप ही है' इस अर्थको बतलानेवाली 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस श्रुतिमें परमेश्वरके व्यापकस्वरूपका श्रुतियोंके रहस्यको जाननेवाले आचार्योंने निरूपण किया है । उस ब्रह्मसे उत्पन्न होनेके कारण, उसीमें ही स्थित होनेके कारण एवं अन्तमें उसीमें लीन होनेके कारण, यह समस्त जगत् 'समुद्रके तरङ्गोंके समान' उस ब्रह्मसे अभिन्न ही है, उस संसारके अज्ञानको नाश करने-वाले विष्णु भगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ ।

दृष्ट्वा गीतास्वक्षरतत्त्वं विधिनाऽजं,
भक्त्या गुर्व्या लभ्य हृदिस्थं दृशिमात्रम् ।
ध्यात्वा तस्मिन्नस्म्यहमित्यत्र विदुर्यं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ २६ ॥

'अक्षरं ब्रह्म परमं' (गी० ८।३) इत्यादि श्रीमद्भगवद्गीताके वाक्योंसे अजन्मा व्यापक ब्रह्मके स्वरूपको विधिपूर्वक आचार्य गुरुओंके द्वारा जानकर, सबके हृदयमें साक्षीरूपसे स्थित, स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्वका महती यानी अनन्य भक्तिके द्वारा साक्षात् करके मुमुक्षु-महोदय, अक्षर ब्रह्मके साथ जगत् एवं जीवका अभेदरूपसे चिन्तन करके 'वह प्रत्यक् आत्मासे अभिन्न ब्रह्म मैं ही हूँ' इस ज्ञानसे जिस तत्त्व को जानते हैं; उस संसारके अज्ञानको नाश करनेवाले विष्णु भगवान्की मैं स्तुति करता हूँ ।

क्षेत्रज्ञत्वं प्राप्य विभुः पञ्चमुखैर्यो,
भुङ्क्तेऽजस्रं भोग्यपदार्थान् प्रकृतिस्थः ।
क्षेत्रे क्षेत्रेऽप्स्विन्दुवदेको बहुधाऽऽस्ते,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ २७ ॥

जो व्यापक परमात्मा, मायामें प्रतिबिम्बरूपसे जीव-भावको प्राप्त होकर चक्षुरादि पांच ज्ञानेन्द्रियोंसे शब्दादिके विषयोंका सदा अनुभव करता है । जैसे अनेक बरतनोंमें भरे हुए जलमें प्रतिबिम्बित चन्द्र, बिम्बरूपसे एक होता हुआ भी अनेकरूपसे प्रतीत होता है; तद्वत् प्रत्येक शरीरमें वर्तमान अन्तःकरण आदि उपाधियोंके सम्बन्ध

से परमार्थमें एक होता हुआ भी आत्मा अनेककी तरह भासता है, उस संसारके अज्ञानको नाश करनेवाले विष्णु भगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ।

युक्त्यालोड्य व्यासवचांस्यत्र हि लभ्यः,
क्षेत्रक्षेत्रज्ञान्तरविद्भिः पुरुषाख्यः।
योऽहं सोऽसौ सोऽस्म्यहमेवेति विदुर्यं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२८॥

श्रीवेदव्यासजीके बनाये हुए वेदान्त (उत्तरमीमाँसा) सूत्रोंका अच्छी तरहसे विचार करके, अबाधित-तर्कोंके द्वारा क्षेत्र यानी शरीर, क्षेत्रज्ञ यानी आत्मा इन दोनोंको पृथक्-पृथक् जानकर जिज्ञासुजन, इस शरीरमें ही पूर्णस्वरूप पुरुष नामक परमात्माको साक्षीरूपसे अनुभव करते हैं। 'जो मैं हूँ वह परमेश्वर है, और जो परमेश्वर है वह मैं हूँ' इस तरहसे जिस अद्वैत तत्त्वका प्रत्यक्ष-साक्षात्कार करते हैं। उस संसारके कारणभूत अज्ञानकी निवृत्तिरूप विष्णु भगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ।

एकीकृत्यानेकशरीरस्थमिमं ज्ञं,
यं विज्ञायेहैव स एवाशु भवन्ति।
यस्मिंल्लीना नेह पुनर्जन्म लभन्ते,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ २९ ॥

अनेक शरीरोंमें स्थित, इस चेतन आत्माको व्यापक परमात्मा से अभिन्न जानकर, तथा उस ब्रह्मात्मतत्त्वका अपरोक्ष साक्षात्कार करके विद्वान् लोग इस शरीरमें ही परमात्मा स्वरूप होजाते हैं, इस-प्रकार शरीरादि उपाधिको छोड़कर जिस परमात्माके साथ एकताको प्राप्त हुए जीव, फिर इस दुःखमय संसारमें जन्म नहीं ग्रहण करते हैं, उस संसारके अज्ञानको नाश करनेवाले विष्णु भगवान्की मैं स्तुति करता हूँ।

द्वन्द्वैकत्वं यच्च मधु-ब्राह्मणवाक्यैः,
कृत्वा शक्रोपासनमासाद्य विभूत्या।
योऽसौ सोऽहं सोऽस्म्यहमेवेति विदुर्यं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ३० ॥

बृहदारण्यक उपनिषद्के चतुर्थाध्यायस्थ मधु-ब्राह्मणवाक्योंसे जो द्वन्द्वोंकी यानी पृथिवी और शरीर, अग्नि और वाणी आदिकोंकी एकता कही है, उस एकताको ग्रहण करके सर्वात्म-ईश्वरभावकी प्राप्तिरूप विभूतिसे इन्द्रके द्वारा की गयी अपनी उपासनाको पाकर, जिज्ञासुलोग 'जो परमेश्वर है वह मैं हूँ; और जो मैं हूँ वह परमेश्वर है' इस विधिसे जिस परमेश्वरको जानते हैं। उस सांसारिक जीवोंके अज्ञानको नाश करनेवाले विष्णु भगवान्की मैं स्तुति करता हूँ।

योऽयं देहे चेष्टयितान्तःकरणस्थः,
सूर्ये चासौ तापयिता सोऽस्म्यहमेव।

इत्यात्मैक्योपासनया यं विदुरीशं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ३१ ॥

जो यह अन्तःकरणरूपी उपाधिसे उपहित चेतन आत्मा शरीर में रहकर चेष्टा करता है, और जो सूर्य-मण्डलमें रहकर संसारको ताप यानी गर्मी देता है, वह मैं ही हूँ; इसप्रकार आत्माकी एकता के दृढ़ अनुसंधानसे महात्मालोग जिस अद्वितीय ईश्वरतत्त्वको जानते हैं, उस संसारके कारण अज्ञानका नाश करनेवाले विष्णु भगवान्की मैं स्तुति करता हूँ।

विज्ञानांशो यस्य सतः शक्त्यधिरूढो,
बुद्धिर्बुध्यत्यत्र बहिर्बोध्यपदार्थान्।
नैवान्तःस्थं बुध्यति यं बोधयितारं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ३२ ॥

जिस परमार्थस्वरूप परमेश्वरके स्वरूपभूत अंशके समान, अविद्यारूपी शक्तिमें प्रतिबिम्बित जीव, बाहर एवं भीतरके पदार्थों (बुद्धि और बुद्धिके सुख-दुःखादि धर्म एवं घटपट आदि) को इस संसारमे जानता है; परन्तु सबको जाननेवाला, अपने भीतर साक्षी-रूपसे स्थित, सर्वज्ञ, चेतन, ईश्वरको बुद्धि कदापि नहीं जान सकती है। उस संसारके कारणभूत अज्ञानके नाश करनेवाले विष्णु भगवान्की मैं स्तुति करता हूँ।

कोऽयं देहे देव इतीत्थं सुविचार्य,
ज्ञाता श्रोतानन्दयिता चैष हि देवः।
इत्यालोच्य ज्ञांश इहास्मीति विदुर्यं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ३३ ॥

इस शरीरमें आत्मदेव कौन है ? यानी क्या शरीर आत्मा है ? या इन्द्रियाँ आत्मा हैं ? या प्राण आत्मा है ? इत्यादि आत्म-निर्णय के सम्बन्धमें अच्छी तरह विचार करके अर्थात् देहादि कार्यकरण सङ्घात, जड़, दृश्य, परिच्छिन्न एवं आद्यन्तशून्य होनेके कारण घटादि की तरह आत्मा नहीं हो सकता, किन्तु इस समुदायसे भिन्न ही कोई ज्ञाता आत्मा है, ऐसा अनुमानके द्वारा निश्चय करके जो सबको जाननेवाला, सुननेवाला एवं आनन्दका अनुभव करनेवाला स्वप्रकाश चेतन है, वही स्वस्वरूप आत्मा है; ऐसा अनुसन्धान करके इस कार्य-करण सङ्घातके बीचमें जो व्यापक विष्णुका चेतन अंश है, वही मैं हूँ, इस प्रकार विवेकादि साधनसम्पन्न महानुभाव निश्चय करते हैं। उस संसारके अज्ञानको नाश करनेवाले विष्णु भगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ।

को ह्येवान्यादात्मनि न स्यादयमेष,
ह्येवानन्दः प्राणिति चापानिति चेति।
इत्यस्तित्वं वक्त्युपपत्त्या श्रुतिरेषा,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ३४ ॥

यदि इस शरीरमें यह प्रत्यक्ष-सिद्ध चेतन आत्मा न होता तो कोई भी प्राणी जिन्दा नहीं रह सकता था, क्योंकि जड़समुदाय चेतन-सत्ताके बिना कुछ काम ही नहीं कर सकता है; इसलिये यह मानना होगा कि—आनन्दरूप परमात्मा ही अविद्यासे जीव-भावको प्राप्त होकर श्वास-प्रश्वास लेता है, एवं अपान-क्रियाको भी करता है, इस प्रकार '**को ह्येवान्यात् कः प्राण्याद्यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्, एष ह्येवानन्दयति**' यह तैत्तिरीय श्रुति युक्ति-पूर्वक जिस आत्म-सत्ताको प्रतिपादन करती है, उस संसारके अज्ञानको नाश करनेवाले विष्णु भगवान्की मैं स्तुति करता हूँ।

प्राणो वाऽहं वाक्श्रवणादीनि मनो वा,
बुद्धिर्वाऽहं व्यस्त उताहोऽपि समस्तः।
इत्यालोच्य ज्ञप्तिरिहास्मीति विदुर्यं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ३५॥

मैं प्राण हूँ या मुख-कान-नाक आदि इन्द्रियरूप हूँ, या मनरूप हूँ, या बुद्धिरूप हूँ, या इन प्राणादियोंके समुदायरूप हूँ, या इनमेंसे प्रत्येक स्वरूप हूँ, इत्यादि विचार करके इन सबका निषेध करनेके बाद 'ज्ञानस्वरूप व्यापक विष्णु ही मैं हूँ' इसप्रकार इस जन्ममें ही भक्तलोग जिस विष्णुतत्त्वको प्रत्यक्ष जानते हैं, उस संसारके अज्ञानको नाश करनेवाले विष्णुभगवान्की मैं स्तुति करता हूँ।

नाहं प्राणो नैव शरीरं न मनोऽहं,
नाहं बुद्धिर्नाहमहंकारधियौ च।

योऽत्र ज्ञांशः सोऽस्म्यहमेवेति विदुर्यं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ३६ ॥

मैं चेतन द्रष्टा, अपरिच्छिन्न, जड़ दृश्य एवं परिच्छिन्न होनेके कारण प्राण नहीं हूँ, शरीर नहीं हूँ, मन नहीं हूँ, न मैं बुद्धि हूँ, और न मैं अहंकार तथा चित्त ही हूँ; किन्तु इस जड कार्यकरण समुदायमें जो विष्णुतत्त्वका ज्ञानस्वरूप सनातन अंश है, वही मैं हूँ। इस प्रकारसे जिज्ञासुलोग जिस तत्त्वको जानते हैं, उस संसारके अज्ञानको नाश करनेवाले श्रीविष्णुभगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ।

सत्तामात्रं केवलविज्ञानमजं सत्,
सूक्ष्मं नित्यं तत्त्वमसीत्यात्मसुताय।
साम्नामन्ते प्राह पिता यं विभुमाद्यं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ३७ ॥

केवल सत्तास्वरूप, विशुद्ध विज्ञानस्वरूप, जन्मरहित, सत्य-सनातन, सूक्ष्म यानी इन्द्रियोंसे अग्राह्य, नाशरहित, सर्वव्यापक, सब का आदि कारण जो विष्णुतत्त्व है, उसका सामवेदके अन्तिम भागमें स्थित छान्दोग्योपनिषत्‌में उद्दालक ऋषिने अपने पुत्र श्वेतकेतुको 'हे श्वेतकेतु! वह विष्णु तू है' इस प्रकार नव बार पुनःपुनः उपदेश किया है, उस सांसारिक जीवोंके अज्ञानको नाश करनेवाले विष्णु भगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ।

मूर्तामूर्ते पूर्वमपोह्याथ समाधौ, *
दृश्यं सर्वं नेति च नेतीति विहाय ।
चैतन्यांशे स्वात्मनि सन्तं च विदुर्यं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ३८ ॥

चेतनके अंशरूप जीवसे अभिन्न अधिष्ठानतत्त्व विष्णुमें मूर्त एवं अमूर्त भूतोंका यानी पृथ्वी, जल एवं तेज अपरोक्ष और वायु एवं आकाश परोक्ष भूतोंका 'नेति नेति' यानी यह नहीं है, यह नहीं है अर्थात् विशुद्ध विष्णुतत्त्वमें स्थूल-प्रपञ्च एवं सूक्ष्म-प्रपञ्च नहीं हैं। इस प्रकार द्वैतप्रपञ्चरूप जगत्का निषेध करके अवधिरूप से परिशिष्ट जिस तत्त्वको विद्वान् लोग जानते हैं, उस संसारके अज्ञानको नाश करनेवाले विष्णुभगवान्की मैं स्तुति करता हूँ।

ओतं प्रोतं यत्र च सर्वं गगनान्तं,
योऽस्थूलानण्वादिषु सिद्धोऽक्षरसंज्ञः ।
ज्ञाताऽतोऽन्यो नेत्युपलभ्यो न च वेद्य-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ३९ ॥

---

* 'समाधीयते चित्तमस्मिन्निति समाधिर्विष्णुः' अर्थात् जिसमें चित्त एकाग्र किया जाता है, उसका नाम समाधि है। इस व्युत्पत्तिसे समाधि शब्दका अर्थ विष्णु है।

† 'अश्नुते व्याप्नोतीति, न क्षरतीत्यक्षरः' इस व्युत्पत्तिसे अक्षर शब्दका व्यापक एवं अविनाशी अर्थ है।

जिस व्यापक विष्णु परमात्मामें परमाणुसे लेकर आकाशपर्यन्त सब जगत् ओतप्रोत है, यानी सूतमें वस्त्रकी तरह कल्पित है। और जो परमात्मा 'अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घं' (यानी वह ब्रह्म स्थूल-मोटा नहीं है, अणु-पतला नहीं है, ह्रस्व-छोटा नहीं है, दीर्घ-लम्बा नहीं है) इत्यादि श्रुतिवाक्योंमें व्यापक होनेसे या अविनाशी होनेसे अक्षर† नामसे प्रसिद्ध है। इसलिये समस्त पदार्थोंका ज्ञाता अक्षर-ब्रह्मसे भिन्न और कुछ भी उपलब्ध नहीं है और यह अक्षरब्रह्म इन्द्रियोंका विषय भी नहीं है, उस संसारके अज्ञानको नाश करने-वाले विष्णु भगवान्की मैं स्तुति करता हूँ।

तावत्सर्वं सत्यमिवाभाति यदेत-
द्यावत्सोऽस्मीत्यात्मनि यो ज्ञो नहि दृष्टः।
दृष्टे तस्मिन् सर्वमसत्यं भवतीदं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ४० ॥

इस कार्यकरण सङ्घातमें जो अधिष्ठान चेतन है, वह मैं हूँ, इस प्रकारका आत्मज्ञान जब तक नहीं होता, तब तक यह समस्त नामरूपात्मक-जगत् सत्य-सा प्रतीत होता है। और जब जीवाभिन्न ब्रह्मात्मतत्त्वका साक्षात्कार हो जाता है, तब यह समस्त संसार मिथ्या प्रतीत होता है यानी प्रथम भी जगत् मिथ्या ही था, तथापि आत्मा के अज्ञानसे मिथ्या नहीं भासता था, आत्म-ज्ञान होनेके बाद निःसंदेह यह जगत् स्वप्नवत् मिथ्या जान पड़ता है। उस कल्पित

संसारके अज्ञानको नाश करनेवाले विष्णु भगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ ।

रागासुक्तं लोहयुतं हेम यथाऽग्नौ,
योगाष्टाङ्गैरुज्ज्वलितज्ञानमयाग्नौ ।
दग्ध्वात्मानं ज्ञं परिशिष्टं च विदुर्यं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ४१ ॥

जैसे लोहा आदि अन्यधातु-मिश्रित सुवर्णको आगमें तपाकर शुद्ध किया जाता है, तद्वत् राग-द्वेषादि दोषोंसे युक्त आत्माको योग के यम-नियमादि आठ अङ्गोंसे प्रदीप्त की हुई आत्मज्ञानरूपी अग्निमें तापकर यानी विचारद्वारा शुद्धकर शरीर इन्द्रिय आदिसे पृथक् अवशिष्ट (सर्वनिषेधावधिरूपसे बचे हुए) शुद्ध सच्चिदानन्दरूप विष्णुतत्त्वको विरक्त विद्वान् लोग जानते हैं, उस संसारके अज्ञानको नाश करनेवाले विष्णुभगवान्‌की मैं स्तुति करता हूँ ।

यं विज्ञानज्योतिषमाद्यं सुविभान्तं,
हृद्यर्केन्द्वग्न्योकसमीड्यं तडिदाभम् ।
भक्त्याराध्येहैव विशन्त्यात्मनि सन्तं,
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ४२ ॥

जो विष्णुतत्त्व सबके हृदयमें साक्षीरूपसे वर्तमान है, बिजली के समान तेजस्वी है, स्वयंज्योति-विज्ञानस्वरूप है, सबका आदि

कारण हैं, सुन्दर-प्रकाशरूप है, सूर्य चन्द्र और अग्निरूपी स्थानमें उपासनाके द्वारा साक्षात् करने योग्य हैं एव स्तुति करने योग्य हैं, ऐसे अपने आत्मस्वरूप विष्णुतत्त्वमें भक्तिरूपी आराधनाके द्वारा भक्त-गण प्रवेशकर तद्रूप हो जाते हैं। उस संसारके कारण अज्ञानको नाश करनेवाले विष्णुभगवान्की मैं स्तुति करता हूँ।

पायाद्भक्तं स्वात्मनि सन्तं पुरुषं यो,
भक्त्या स्तौतीत्याङ्गिरसं विष्णुरिमं माम्।
इत्यात्मानं स्वात्मनि संहृत्य सदैक-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ ४३ ॥

जो विष्णुभक्त अपने स्वस्वरूपमें स्थित हैं 'मैं विष्णु ही हूँ' इस अभेद ज्ञानसे युक्त हैं, स्वस्वरूपभूत विष्णुतत्त्वमें अपने मनको रोककर समस्त अङ्गोंके सारभूत विष्णुतत्त्वको भक्तिपूर्वक स्तुति करते हैं, ऐसे भक्तजनकी विष्णु भगवान् सदा रक्षा करते हैं, उस सदा एक-अद्वय संसारके अज्ञानको नाश करनेवाले विष्णु भगवान्की मैं स्तुति करता हूँ।

इत्थं स्तोत्रं भक्तजनेड्यं भवभीति-
ध्वान्तार्काभं भगवत्पादीयमिदं यः।
विष्णोर्लोकं पठति शृणोति व्रजति ज्ञो,
ज्ञानं ज्ञेयं स्वात्मनि चाप्नोति मनुष्यः ॥ ४४ ॥

जो मनुष्य, उपरोक्त प्रकारसे भक्तजनोंसे स्तुति करने योग्य, संसारके भयरूपी अन्धकारको दूर करनेमें सूर्यके समान, भगवत्पाद-आचार्य श्रीशङ्कर स्वामीप्रणीत इस 'हरिमीडे' स्तोत्रका पाठ करता है, या दूसरेके मुखसे सुनता है, वह विष्णु भगवान्के परमधामको प्राप्त होता है; और पश्चात् मुक्त हो जाता है। तथा जो मनुष्य, इस स्तोत्रके अर्थका अनुसन्धान करता है, वह अपने ही आत्मामें विष्णुतत्त्वका साक्षात्कार कर, उस तत्त्वको अभेदरूपसे प्राप्त करता है, यानी वह स्वयं परिपूर्ण आनन्दस्वरूप विष्णु ही हो जाता है।

॥ इति हरिमीडे स्तोत्र ॥

प्रश्नोत्तररत्नमालिका

कः खलु नालंक्रियते, दृष्टादृष्टार्थसाधनपटीयान् ।
अमुया कण्ठस्थितया, प्रश्नोत्तररत्नमालिकया ॥१॥

प्रश्न

हे गुरुदेव ! कण्ठमें की हुई इस प्रश्नोत्तर-रत्नमालिकासे कौन शोभाको नहीं पाता है ?

उत्तर

इसलोक एवं परलोकके विषयभोगोंके साधनमें कुशल मनुष्य ।

भगवन् किमुपादेयं गुरुवचनं हेयमपि च किमकार्यम् ।
को गुरुरधिगततत्त्वः, शिष्यहितायोद्यतः सततम् ॥२॥

प्रः—हे भगवन् ! उपादेय (ग्रहणकरने योग्य) क्या है ?

उः—गुरुका वचन ।

प्रः—हेय (त्याग करने योग्य) क्या है ?

उः—बुरा कर्म ।

प्रः—गुरु कौन है ?

उः—जिसने परमात्मतत्त्वका साक्षात्कार करलिया है, एवं जो शिष्योंके कल्याणके लिये निरन्तर यत्नशील रहताहै, वह गुरु है ।

त्वरितं किं कर्तव्यं विदुषां संसारसंततिच्छेदः ।
किं मोक्षतरोर्बीजं सम्यग्ज्ञानं क्रियासिद्धम् ॥३॥

प्रः—विद्वानोंको अतिशीघ्र क्या करना चाहिये ?

उः—संसारके जन्म-मरणरूपी प्रवाहका उच्छेद (विनाश) ।

प्रः—मोक्षरूपी वृक्षका बीज क्या है ?

उः—निष्ठा (धारणा) से युक्त यथार्थ आत्मज्ञान ।

कः पथ्यतरो धर्मः कः शुचिरिह यस्य मानसं शुद्धम् ।
कः पण्डितो विवेकी किं विषमवधीरणा गुरुषु ॥४॥

प्रः—अतिशय पथ्य (पालने योग्य) क्या है ?

उः—सनातनधर्म ।

प्रः—इस लोकमें पवित्र कौन है ?

उः—जिसका मन शुद्ध है ।

प्रः—पण्डित कौन है ?

उः—जो सत् और असत् का विवेकी है ।

प्रः—विष क्या है ?

उः—गुरुओंमें अश्रद्धारूपी तिरस्कार ।

किं संसारे सारं बहुशोऽपि विचिन्त्यमानमिदमेव ।
किं मनुजेष्विष्टतमं स्वपरहितायोद्यतं जन्म ॥५॥

प्रः—इस असार संसारमें सार क्या है ?

उः—बार बार चिन्तन किया हुआ परमात्मतत्त्व ।

प्रः–मनुष्योंसे अतिशय करके अभिलषित क्या है ?

उः–अपना और अन्यका कल्याणके लिये सदा प्रयत्नशील जीवन।

मदिरेव मोहजनकः कः स्नेहः के च दस्यवो विषयाः।
का भववल्ली तृष्णा को वैरी यस्त्वनुद्योगः ॥६॥

प्रः–मदिराकी तरह अचेतन करनेवाला कौन है ?

उः–शरीर, स्त्री, पुत्र, धनादिमें स्नेह।

प्रः–शत्रु कौन हैं ?

उः–शव्दादि पांच विषय।

प्रः–संसारकी जड़ क्या है ?

उः–तृष्णा।

प्रः–वैरी कौन है ?

उः–अपने कल्याणके लिये पुरुषार्थ न करनेवाला।

कस्माद्भयमिह मरणादीशादिंह को विशिष्यतेऽरागी।
कः शूरो यो ललनालोचनबाणैर्न च व्यथितः ॥७॥

प्रः–किससे भय रखना चाहिये ?

उः–मरणसे एवं ईश्वरसे।

प्रः–इस संसारमें श्रेष्ठ कौन है ?

उः–विरक्त।

प्रः–शूर कौन है ?

उः–जो स्त्रियोंके कटाक्षरूपी वाणोंसे व्यथाको प्राप्त न हो।

पातुं कर्णाञ्जलिभिः किममृतमिह युज्यते सदुपदेशः।
किं गुरुताया मूलं यदेतदप्रार्थनं नाम ॥८॥

प्रः–कौन कानरूपी अञ्जलिसे अमृत पान करने योग्य है ?
उः–यथार्थ उपदेश।
प्रः–बड़प्पनकी जड़ क्या है ?
उः–किसीसे कुछ भी न मांगना।

किं गहनं स्त्रीचरितं कश्चतुरो यो न खण्डितस्तेन।
किं दुःखमसन्तोषः किं लाघवमधमतो याञ्चा ॥९॥

प्रः–गहन (जाननेके लिये असंभव) क्या है ?
उः–स्त्रियोंका चरित्र।
प्रः–चतुर (कुशल) कौन है ?
उः–जो स्त्रियोंसे खण्डित नहीं हुआ है।
प्रः–दुःख क्या है ?
उः–असंतोष।
प्रः–छोटापन क्या है ?
उः–अधम-संसारियोंसे प्रार्थना करना।

किं जीवितमनवद्यं किं जाड्यं पाठतोऽप्यनभ्यासः।
को जागर्ति विवेकी का निद्रा मूढता जन्तोः ॥१०॥

प्रः–जीवन क्या है ?
उः–दोषरहित।

प्रः-जड़पना क्या है ?

उः-पढ़ लेनेपर भी अभ्यास न करना ।

प्रः-जागता कौन है ?

उः-विवेकी ।

प्रः-प्राणीकी निद्रा क्या है ?

उः-मूढ़पना ।

> नलिनीदलगतजलवत्तरलं किं यौवनं धनं चायुः ।
> कथय पुनः के शशिनः किरणसमाः सज्जना एव ॥११॥

प्रः-कमलके पत्तेके ऊपर रहे हुए जलकी तरह चंचल कौन है ?

उः-यौवन, धन और आयु ।

प्रः-चन्द्रमाकी किरणोंके समान शीतल एवं शान्त कौन हैं ?

उः-सज्जन महापुरुष ।

> को नरकः परवशता किं सौख्यं सर्वसंगविरतिर्या ।
> किं सत्यं भूतहितं प्रियं च किं प्राणिनामसवः ॥१२॥

प्रः-नरक क्या है ?

उः-परतन्त्रता ।

प्रः-सुख क्या है ?

उः-संसारकी तमाम आसक्तियोंसे वैराग्य होना ।

प्रः-सत्य क्या है ?

उः-जिससे तमाम प्राणियोंका कल्याण हो ।

प्रः-प्राणियोंको प्रिय क्या है ?

उः-प्राण।

कोऽनर्थफलो मानः का सुखदा साधुजनमैत्री।
सर्वव्यसनविनाशे को दक्षः सर्वथा त्यागी ॥१३॥

प्रः-अनर्थ फलवाला कौन है ?

उ-मान।

प्रः-सुख देनेवाली कौन है ?

उः-साधु पुरुषोंके साथ मित्रता।

प्रः-तमाम प्रकारके कामादि व्यसनोंके नाश करनेमें कौन कुशल है ?

उः-जो हर प्रकारसे त्यागी है।

किं मरणं मूर्खत्वं किं चानर्घं यदवसरे दत्तम्।
आमरणात्किं शल्यं प्रच्छन्नं यत्कृतं पापम् ॥१४॥

प्रः-मरण क्या है ?

उः-मूर्खपना।

प्रः-अमूल्य क्या है ?

उः-समयपर योग्य अधिकारीको कुछ दिया जाय।

प्रः-मरण पर्यन्त शूलकी तरह चुभनेवाला कौन है ?

उः-छिपकर किया हुआ पापकर्म।

कुत्र विधेय यत्नो विद्याभ्यासे सदौषधे दाने।
अवधीरणा क्व कार्या खलपरयोषित्परधनेषु ॥१५॥

प्रः-कहाँ प्रयत्न करना चाहिये ?

उः-विधाभ्यासमें, सच्ची औषधिमें एवं सत्पात्रके दानमें ।

प्रः-उपेक्षा कहाँ करनी चाहिये ?

उः-खल (दुष्ट) मनुष्योंमें, पराई स्त्रियोंमें तथा अन्यके धनमें ।

काऽहर्निशमनुचिन्त्या संसारासारता न तु प्रमदा ।
का प्रेयसी विधेया करुणा दीनेषु सज्जने मैत्री ॥१६॥

प्रः-दिनरात चिन्तन करने योग्य क्या है ?

उः-संसारकी असारता ।

प्रः-कौन चिन्तन करने योग्य नहीं है ?

उः-स्त्री ।

प्रः-आनन्द करनेवाली कौन है ?

उः-दीन-दुःखियोंके ऊपर की हुई करुणा (दया) और सज्जन महापुरुषोंके साथ की हुई मित्रता ।

कण्ठगतैरप्यसुभिः कस्य ह्यात्मा न शक्यते जेतुम् ।
मूर्खस्य शंकितस्य च विषादिनो वा कृतघ्नस्य ॥१७॥

प्रः-कण्ठगत प्राण होनेपर भी किसके मनका जय नहीं कर सकते हैं ?

उः-मूर्ख, संशयग्रस्त, खेदयुक्त और कृतघ्न मनुष्योंके मनका ।

कः साधुः सद्वृत्तः कमधममाचक्षते त्वसद्वृत्तम् ।
केन जितं जगदेतत्सत्यतितिक्षावता पुंसा ॥१८॥

प्रः-साधु कौन है ?

उः-सदाचारी ।

प्रः-अधम (नीच) किसको कहते हैं ?

उः-दुराचारीको।

प्रः-इस जगत्को किसने जीत लिया है ?

उः-सत्यतत्त्वमें निष्ठा रखनेवाला तितिक्षु (सहनशील) पुरुषने।

कस्मै नमांसि देवाः कुर्वन्ति दयाप्रधानाय ।
कस्मादुद्वेगः स्यात्संसारारण्यतः सुधियः ॥ १६ ॥

प्रः-देवता भी किसको नमस्कार करते हैं ?

उः-जिसके हृदयमें विशेषरूपसे दया रहती है, उसको।

प्रः-बुद्धिमान् विवेकीको किससे उद्वेग (भय) होता है ?

उः-संसाररूपी जंगलसे।

कस्य वशे प्राणिगणः सत्यप्रियभाषिणो विनीतस्य ।
क्व स्थातव्यं न्याय्ये पथि दृष्टादृष्टलाभाढ्ये ॥२०॥

प्रः-तमाम प्राणियोंका समुदाय किसके वशमें होजाता है ?

उः-सत्य एवं प्रियभाषी, विनयशील महापुरुषके।

प्रः-कहाँ रहना चाहिये ?

उः-दृष्टलाभ (कीर्ति आदि) एवं अदृष्टलाभ (परमधाम प्राप्ति आदि) से युक्त, न्याय (धर्म) के मार्गमें।

कोऽन्धो योऽकार्यरतः को बधिरो यो हितानि न शृणोति ।
को मूको यः काले प्रियाणि वक्तुं न जानाति ॥२१॥

प्रः-अन्धा कौन है ?

उः-पापकर्ममें प्रीति करनेवाला।

प्रः-बहिरा कौन है ?

उः-जो हितकर वचनोंको नहीं सुनता है ।

प्रः-मूक कौन है ?

उः-जो समयपर प्रिय-भाषण करना नहीं जानता है ।

किं दानमनाकांक्षं किं मित्रं यो निवारयति पापात् ।
कोऽलंकारः शीलं किं वाचां मण्डनं सत्यम् ॥ २२ ॥

प्रः-दान क्या है ?

उः-जिसमें प्रत्युपकारकी आकांक्षा न हो ।

प्रः-मित्र कौन है ?

उः-जो पाप-कर्मसे रक्षा करे ।

प्रः-अलंकार क्या है ?

उः-शील (सरल निष्कपट स्वभाव) ।

प्रः-वाणीका भूषण क्या है ?

उः-सत्य-भाषण ।

विद्युद्विलसितचपलं किं दुर्जनसंगतिर्युवतयश्च ।
कुलशीलनिष्प्रकंपाः के कलिकालेऽपि सज्जना एव ॥ २३ ॥

प्रः-बिजलीके समान चपल क्या है ?

उः-दुष्टोंकी संगति और युवती स्त्रियाँ ।

प्रः-घोर कलिकालमें भी कुलसे एवं शीलसे सदा अचल कौन है ?

उः-सज्जन महापुरुष ।

चिन्तामणिरिव दुर्लभमिह किं कथयामि तच्चतुर्भद्रम् ।
किं तद्वदन्ति भूयो विधूततमसो विशेषेण ॥ २४ ॥
दानं प्रियवाक्सहितं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम् ।
वित्तं त्यागसमेतं दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रम् ॥ २५ ॥

प्रः—चिन्तामणिके समान, इस लोकमें दुर्लभ क्या है ?

उः—चतुर्भद्र ।

प्रः—अज्ञानसे रहित विद्वान् लोग विशेषरूपसे चतुर्भद्र किसको कहते हैं ?

उः—(१) प्रियवाणी सहित दान (२) गर्वसे रहित ज्ञान (३) क्षमासे युक्त शौर्य (४) त्यागसे युक्त धन, इन चारोंको कल्याणके साधन होनेसे चतुर्भद्र कहते हैं ।

किं शोच्यं कार्पण्यं सति विभवे किं प्रशस्तमौदार्यम् ।
कः पूज्यो विद्वद्भिः स्वभावतः सर्वदा विनीतो यः ॥ २६ ॥

प्रः—शोक करने योग्य कौन है ?

उः०—वैभव होने पर भी कृपणता ।

प्रः०—प्रशंसा करने योग्य कौन है ?

उः—उदारता ।

प्रः—विद्वानों से भी पूजा करने योग्य कौन है ?

उः—जो स्वभावसे सर्वदा विनयशील है ।

कः कुलकमलदिनेशः सति गुणविभवेऽपि यो नम्रः ।
कस्य वशे जगदेतत्प्रियहितवचनस्य धर्मनिरतस्य ॥२७॥

प्र:—कुलरूपी कमलको सूर्यके समान प्रफुल्लित करनेवाला कौन है ?

उ:—विद्या, दया, आदि दैवीगुणरूपी विभव होनेपर भी जो नम्र है।

प्र:—यह समस्त जगत् किसके वशमें है ?

उ:—जो धर्ममें प्रेम करता है और प्रिय एवं हितकर वाणी बोलता है, उसके।

विद्वन्मनोहरा का सत्कविता बोधवनिता च।
कं न स्पृशति विपत्तिः प्रवृद्धवचनानुवर्तिनं दान्तम्॥ २८॥

प्र:—विद्वानोंके भी मनको हरन करनेवाली कौन है ?

उ:—बोधप्रद, ईश्वरमहिमा युक्त, सच्ची कविता और ब्रह्मविद्यारूपी वनिता (स्त्री)।

प्र:—विपत्ति किसको स्पर्श नहीं करती है ?

उ:—जो जितेन्द्रिय है यानी संयमी है, और ज्ञानवृद्ध धर्मवृद्ध आदि महापुरुषोंके उपदेशोंके अनुसार चलनेवाला है, उसको।

कस्मै स्पृहयति कमला त्वनलसचित्ताय नीतिवृत्ताय।
त्यजति च कं सहसा द्विजगुरुसुरनिन्दाकरं च सालस्यम्॥ २९॥

प्र:—लक्ष्मी किसकी स्पृहा (इच्छा) करती है ?

उ:—जिसके चित्तमें आलस नहीं है और जो नीतिसे युक्त है, उसकी।

प्र:—लक्ष्मी सहसा किसको छोड़ देती है ?

उ:—जो आलसी है और ब्राह्मण, गुरु तथा देवताओंकी निन्दा करता है, उसको।

कुत्र विधेयो वासः सज्जननिकटेऽथवा काश्याम् ।
कः परिहार्यो देशः पिशुनयुतो लुब्धभूपश्च ॥ ३० ॥

प्र–कहाँ निवास करना चाहिये ?

उः–सज्जन महापुरुषोंके समीपमें अथवा श्रीकाशीधाममें ।

प्रः–किस देशको छोड़ देना चाहिये ?

उः–जो पिशुन (चुगलखोर) से युक्त एवं लोभी-कृपण राजासे युक्त देश है, उसको ।

केनाशोच्यः पुरुषः प्रणतकलत्रेण धीरविभवेन ।
इह भुवने कः शोच्यः सत्यपि विभवे न यो दाता ॥ ३१ ॥

प्रः–किससे मनुष्य शोक रहित होता है ?

उः–नम्र-सरल सतीस्त्रीसे और अच्छे मार्गमें जानेवाले वैभवसे ।

प्रः–इस भुवनमें शोचनीय कौन है ?

उः–वैभव होनेपर भी जो दान नहीं करता है, वह ।

किं लघुतायाः मूलं प्राकृतपुरुषेषु या याञ्चा ।
रामादपि कः शूरः स्मरशरनिहतो न यश्चलति ॥ ३२ ॥

प्रः–छोटेपन की जड़ क्या है ?

उः–विषयी-पामर मनुष्योंसे याचना करना ।

प्रः–भगवान् रामसे भी महाशूरवीर कौन है ?

उः–जो कामदेवके बाणसे ताड़ित होनेपर भी चलायमान न हो ।

किमहर्निशमनुचिन्त्यं भगवच्चरणं न संसारः ।
चक्षुष्मन्तोऽप्यन्धाः के स्युर्ये नास्तिका मनुजाः ॥ ३३ ॥

प्रः—दिनरात किसकी चिन्ता करनी चाहिये ?

उः—भगवान्‌के परम पावन चरण-कमलोंकी ।

प्रः—किसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये ?

उः—संसारकी ।

प्रः—चक्षु होनेपर भी अन्धे कौन हैं ?

उः—जो नास्तिक (ईश्वर, वेद एवं परलोकमें विश्वास नहीं करनेवाले) मनुष्य हैं, वे ।

कः पंगुरिह प्रथितो व्रजति न यो वार्धके तीर्थम् ।
किं तीर्थमपि च मुख्यं चित्तमलं यन्निवारयति ॥ ३४ ॥

प्रः—इस संसारमें पंगु कौन प्रसिद्ध है ?

उः—जो वृद्ध होनेपर भी काशी आदि स्थावर तीर्थ, और सन्त-महात्मारूपी जंगम तीर्थमें जाता नहीं है ।

प्रः—मुख्य तीर्थ कौन है ?

उः—जो चित्तके पापको निवारण करे, वह ।

किं स्मर्तव्यं पुरुषैर्हरिनाम सदा न यावनी भाषा ।
को हि न वाच्यः सुधिया परदोषश्चानृतं तद्वत् ॥ ३५ ॥

प्रः—मनुष्योंको हरदम किसका स्मरण करना चाहिये ?

उः—श्रीहरिके नामका ।

प्रः—किसका स्मरण नहीं करना चाहिये ?

उः—यवनोंकी (उर्दू, फारसी, अंग्रेजी आदि) भाषाका ।

प्रः—बुद्धिमान् मनुष्यसे क्या नहीं कहना चाहिये ?

उः—दूसरोंका दोष और अनृत (झूठ भाषा) ।

किं संपाद्यं मनुजैर्विद्या वित्तं बलं यशः पुण्यम् ।
कः सर्वगुणविनाशी लोभः शत्रुश्च कः कामः ॥ ३६ ॥

प्रः—मनुष्योंको क्या सम्पादन करना चाहिये ?

उः—विद्या, धन, बल, कीर्ति और पुण्य ।

प्रः—सर्व गुणोंके विनाश करनेवाला कौन है ?

उः—लोभ ।

प्रः—शत्रु कौन है ?

उः—काम ।

का च सभा परिहार्या हीना या वृद्धसचिवेन ।
इह कुत्रावहित. स्यान्मनुजः किल राजसेवायाम् ॥ ३७ ॥

प्रः—किस सभाका त्याग करना चाहिये ?

उः—जो धर्मवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध मन्त्रीसे रहित सभा है, उसका ।

प्रः—मनुष्यको कहाँ विशेषरूपसे सावधानी रखनी चाहिये ।

उः—धार्मिक राजाकी सेवामें ।

प्राणादपि को रम्यः कुलधर्मः साधुसंगश्च ।
का संरक्ष्या कीर्तिः प्रतिव्रता नैजबुद्धिश्च ॥ ३८ ॥

प्रः—प्राणसे भी अत्यन्त प्यारा कौन है ?

उः—कुलका धर्म और साधु पुरुषोंकी संगति ।

प्रः—अति प्रयत्नसे कौन रक्षा करने योग्य है ?

उः—कीर्ति, पतिव्रता स्त्री और अपनी बुद्धि ।

का कल्पलता लोके सच्छिष्यायार्पिता विद्या ।
कोऽक्षयवटवृक्षः स्याद्विधिवत्सत्पात्रदत्तदानं यत् ॥ ३९ ॥

प्रः—इस लोकमें कल्पलता क्या है ?

उः—योग्य शिष्यको दी हुई विद्या ।

प्रः—अक्षयवट वृक्ष क्या है ?

उः—विधिपूर्वक सत्पात्रको दिया हुआ दान ।

किं शस्त्रं सर्वेषां युक्तिर्माता च का धेनुः ।
किं नु बलं यद्धैर्यं को मृत्युर्यदवधानरहितत्वम् ॥ ४० ॥

प्रः—सभीके लिये शस्त्र क्या है ?

उः—युक्ति ।

प्रः—माता क्या है ?

उः—गाय ।

प्रः—बल क्या है ?

उः—धैर्य ।

प्रः—मृत्यु क्या है ?

उः—सावधानसे नहीं रहना ।

कुत्र विषं दुष्टजने किमिहाशौचं भवेदृणं नृणाम् ।
किमभयमिह वैराग्यं भयमपि किं वित्तमेव सर्वेषाम् ॥ ४१ ॥

प्रः–विष कहाँ है ?

उः–दुष्ट मनुष्यमें ।

प्रः-मनुष्योंको अशौच क्या है ?

उः–ऋण ।

प्रः–संसारमें अभय क्या है ?

उः–वैराग्य ।

प्रः–सबके लिये भय क्या है ?

उः–धन ।

का दुर्लभा नराणां हरिभक्तिः पातकं च किं हिंसा ।
को हि भगवत्प्रियः स्याद्योऽन्यं नोद्वेजयेदनुद्विग्नः ॥ ४२ ॥

प्रः–मनुष्योंको दुर्लभ क्या है ?

उः–श्रीहरिकी भक्ति ।

प्रः–पाप क्या है ?

उः–मनसे वाणीसे एवं शरीरसे होनेवाली हिंसा ।

प्रः–भगवान्को प्रिय कौन है ?

उः–जो स्वयं उद्वेगसे रहित है, और अन्यको कदापि उद्विग्न करता नहीं है, वह ।

कस्मात्सिद्धिस्तपसो बुद्धिः क्वनु भूसुरे कुतो बुद्धिः ।
वृद्धोपसेवया के वृद्धा ये धर्मतत्त्वज्ञाः ॥ ४३ ॥

प्रः–किससे सिद्धि होती है ?

उः–तपसे ।

प्रः—बुद्धि कहाँ है ?

उः—भूदेव-ब्राह्मणमें ।

प्रः—बुद्धि किससे प्राप्त होती है ?

उः—वृद्धोंकी सेवासे ।

प्रः—वृद्ध कौन हैं ?

उः—जो धर्म-तत्त्वको जाननेवाले हैं ।

> संभावितस्य मरणादधिकं किं दुर्यशो भवति ।
> लोके सुखी भवेत्को धनवान्धनमपि च किं यतचेष्टम् ॥ ४४ ॥

प्रः—संभावित (प्रसिद्ध) मनुष्यको मरणसे भी अधिक दुःखदायक क्या है ?

उः—अपयश ।

प्रः—लोकमें लोकदृष्टिसे सुखी कौन है ?

उः—धनवान् ।

प्रः—धन क्या है ?

उः—संयमपूर्वक आहार-विहार यानी सदाचार ।

> सर्वसुखानां बीजं किं पुण्यं दुःखमपि कुतः पापात् ।
> कस्यैश्वर्यं यः किल शङ्करमाराधयेद्भक्त्या ॥ ४५ ॥

प्रः—तमाम सुखोंकी जड़ क्या है ?

उः—पुण्य ।

प्रः—दुःख किससे होता है ?

उः—पापसे।

प्रः—ऐश्वर्य किससे होता है ?

उः—भगवान् श्रीशंकरकी विशुद्ध भक्तिपूर्वक आराधना करनेसे।

को वर्धते विनीतः को वा हीयते यो दृप्तः।
को न प्रत्येतव्यो ब्रूते यश्चानृतं शश्वत् ॥ ४६ ॥

प्रः—कौन सभी प्रकारसे बढ़ता है ?

उः—विनयशील।

प्रः—कौन सर्व तरफसे घटता है ?

उः—अभिमानी।

प्रः—किसका विश्वास नहीं करना चाहिये ?

उः जो निरन्तर अनृत भाषण करता है।

कुत्रानृतेऽप्यपापं यच्चोक्तं धर्मरक्षार्थम्।
को धर्मोऽभिमतो यः शिष्टानां निजकुलीनानाम् ॥ ४७ ॥

प्रः—किस जगह अनृत कहनेपर भी पाप नहीं होता है ?

उः जहाँ धर्मकी रक्षा होती हो, वहाँ।

प्रः-धर्म कौन है ?

उः—जो निजकुलमें होनेवाले सदाचारी वृद्ध पुरुषोंके अभिमत हो।

साधुबलं किं दैवं कः साधुः सर्वदा तुष्टः।
दैवं किं यत्सुकृतं कः सुकृती श्लाघ्यते च यः सद्भिः ॥ ४८ ॥

प्रः—साधु-महात्माओंका बल क्या है ?

उः—आराधित देवता।

प्रः-साधु कौन है ?

उः-जो सर्वदा सन्तुष्ट हो।

प्रः-दैव क्या है ?

उः धर्म, भक्ति, वैराग्य, ज्ञान आदिसे होनेवाला पुण्य।

प्रः-पुण्यशाली कौन है ?

उः-जिसकी सत्पुरुष भी प्रशंसा करते हो वह।

गृहमेधिनश्च मित्रं किं भार्या को गृही च यो यजते।
को यज्ञो यः श्रुत्याविहितः श्रेयस्करो नृणाम् ॥ ४९ ॥

प्रः-गृहस्थका असली मित्र कौन है ?

उः-भार्या।

प्रः-गृहस्थ कौन है ?

उः-जो पञ्चमहायज्ञके द्वारा विश्वरूप भगवान्का यजन करता है।

प्रः यज्ञ कौन है ?

उः-जो वेदने विधान किया हो, और अनुष्ठानसे मनुष्योंका श्रेयः (कल्याण) करनेवाला हो, वह।

कस्य क्रिया हि सफला यः पुनराचारवान् शिष्टः।
कः शिष्टो यो वेदप्रमाणवान्को हतः क्रियाभ्रष्टः ॥ ५० ॥

प्रः-किसकी क्रिया फलवाली होती है ?

उः-जो सदाचारी विचारशील शिष्ट है, उसकी।

प्रः-शिष्ट कौन है ?

उः–जो वेदको परम प्रामाणिक मानकर वैदिक उपदेशको अपने आचरणमें रखता है, वह।

प्रः–मरा हुआ कौन है?

उः–जो क्रिया (सदाचार) से भ्रष्ट है।

को धन्यः संन्यासी को मान्यः पण्डितः साधुः।
कः सेव्यो यो दाता को दाता योऽर्थितृप्तिमातनुते ॥ ५१ ॥

प्रः- धन्य कौन है?

उः- संन्यासी।

प्रः–मान्य कौन है?

उः- सदाचारी विद्वान्।

प्रः–सेव्य कौन है?

उः–दाता (दानशील)।

प्रः दाता कौन है?

उः–अर्थीको जो तृप्त करता है, वह।

किं भाग्यं देहवतामारोग्यं कः फली कृषिकृत्।
कस्य न पापं जपतः कः पूर्णो यः प्रजावान्स्यात् ॥५२॥

प्रः–देहधारियोंका भाग्य क्या है?

उः–आरोग्य।

प्रः–फलवाला कौन है?

उः–किसान (खेती करनेवाला)

प्र:–किसको पाप स्पर्श नहीं करता है ?

उ:–जो मन्त्रको जपता रहता है, उसको ।

प्र:–पूर्ण कौन है ?

उ:–जो प्रजावाला है, वह ।

किं दुष्करं नराणां यन्मनसो निग्रहः सततम् ।
को ब्रह्मचर्यवान्स्याद्यश्चास्खलितोर्ध्वरेतस्कः ॥५३॥

प्र:–मनुष्योंके लिये दुष्कर क्या है ?

उ:–निरन्तर मनको स्वाधीन रखना ।

प्र:–ब्रह्मचारी कौन है ?

उ:–जिसका वीर्य कदाचित् स्खलित न हो, किन्तु उर्ध्व-मस्तिष्कमें विशेषरूपसे वीर्यका धारण हो, वह ।

का च परदेवतोक्ता चिच्छक्तिः को जगद्भर्ता ।
सूर्यः सर्वेषां को जीवनहेतुः स पर्जन्यः ॥५४॥

प्र:–परदेवता कौन है ?

उ:–सर्वव्यापिनी चेतन-शक्ति ।

प्र:–जगत्का भर्ता कौन है ?

उ:–सूर्य-भगवान् ।

प्र:–सभीके जीवनका हेतु कौन है ?

उ:–पर्जन्य (बादल)–वृष्टि ।

कः शूरो यो भीतत्राता त्राता च कः स गुरुः।
को हि जगद्गुरुः शम्भुर्ज्ञानं कुतः शिवादेव ॥५५॥

प्रः—शूर कौन है ?

उः—भयभीत मनुष्यकी रक्षा करनेवाला ।

प्रः—रक्षक कौन है ?

उः—गुरु ।

प्रः—जगद्गुरु कौन है ?

उः—श्रीशङ्कर महादेव ।

प्रः—ज्ञान किससे होता है ?

उः—जगद्गुरु श्रीशिवजी महाराजकी कृपासे ।

मुक्तिं लभेत कस्मान्मुकुन्दभक्तेर्मुकुन्दः कः ।
यस्तारयेदविद्यां का चाविद्या यदात्मनोऽस्फूर्तिः ॥५६॥

प्रः—किससे मुक्ति प्राप्त होती है ?

उः—मुकुन्द भगवान्‌की भक्तिसे ।

प्रः—मुकुन्द कौन है ?

उः—जो अविद्यासे तार देवे ।

प्रः—अविद्या क्या है ?

उः—आत्माके यथार्थ स्वरूपका भान न होना ।

कस्य न शोको यः स्यादकामः किं सुखं तुष्टिः ।
को राजा रंजनकृत्कश्च श्वा नीचसेवको यः स्यात् ॥५७॥

प्रः—शोक किसको नहीं होता है ?

उः—जो कामनाओंसे रहित है ।

प्रः—सुख क्या है ?

उः—संतोष ।

प्रः—राजा कौन है ?

उः—जो अपनी प्रजाका लालन-पालनद्वारा रञ्जन (हर्ष) करनेवाला हो।

प्रः—कुत्ता कौन है ?

उः—जो नीच-पामरका सेवक है ।

को मायी परमेशः क इन्द्रजालायते प्रपञ्चोऽयम् ।
कः स्वप्ननिभो जाग्रद्व्यवहारः सत्यमपि च किं ब्रह्म ॥ ५८ ॥

प्रः—मायावाला कौन है ?

उः—परमेश्वर ।

प्रः—इन्द्रजालके समान मिथ्या कौन है ?

उः—यह नामरूपात्मक द्वैतप्रपञ्च ।

प्रः—स्वप्नके समान क्षणभङ्गुर क्या है ?

उः—जाग्रत् संसारका व्यवहार ।

प्रः—सत्य (तीन कालमें भी अबाधित) क्या है ?

उः—ब्रह्म (सर्वव्यापक आत्मा) ।

किं मिथ्या यद्विद्यानाश्यं तुच्छं तु शशविषाणादि ।
का चानिर्वचनीया माया किं कल्पितं द्वैतम् ॥ ५९ ॥

प्र:—मिथ्या क्या है ?

उ:—जिसका ब्रह्मविद्यासे विनाश हो, वह ।

प्र:—तुच्छ क्या है ?

उ:—शशशृङ्ग, वन्ध्यापुत्र, आदि ।

प्र:—अनिर्वचनीय क्या है ?

उ:—माया और मायाका कार्य संसार ।

प्र:—कल्पित (अध्यस्त) क्या है ?

उ:—द्वैत-प्रपञ्च ।

किं पारमार्थिकं स्यादद्वैतं चाविद्या कुतोऽनादिः ।
वपुषश्च पोषकं किं प्रारब्धं चान्नदायि किमायुः ॥ ६० ॥

प्र:—पारमार्थिक तत्त्व क्या हैं ?

उ:—अद्वैत-ब्रह्म ।

प्र:—अविद्या किससे हुई ?

उ:—किसीसे भी नहीं, क्योंकि वह अनादि है, उसका आदि कोई नहीं बतला सकता ।

प्र:—शरीरका पोषण करनेवाला कौन है ?

उ:—प्रारब्ध-कर्म ।

प्र:—अन्न देनेवाला कौन है ?

उ:—आयु ।

को ब्राह्मणैरुपास्यो गायत्र्यर्काग्निगोचरः शम्भुः ।
गायत्र्यामादित्ये चाग्नौ शम्भौ च किं नु तत्तत्त्वम् ॥ ६१ ॥

प्रः—ब्राह्मणोंसे उपासना करने योग्य कौन है ?

उः—गायत्री, सूर्य और अग्निके अधिष्ठाता भगवान् श्रीशङ्कर ।

प्रः—गायत्रीमें, सूर्यमें अग्निमें और श्रीशङ्करमें कौन तत्त्व है ?

उः—सर्वव्यापक अद्वैत-ब्रह्म ।

प्रत्यक्षदेवता का माता पूज्यो गुरुश्च कस्तातः ।
कः सर्वदेवतात्मा विद्याकर्मान्वितो विप्रः ॥ ६२ ॥

प्रः—प्रत्यक्ष देवता कौन है ?

उः—माता ।

प्रः—पूज्य गुरु कौन है ?

उः—पिता ।

प्रः—सर्व देवतास्वरूप कौन है ?

उः—ज्ञान (उपासना) और कर्मसे युक्त ब्राह्मण ।

कश्च कुलक्षयहेतुः संतापः सज्जनेषु योऽकारि ।
केषाममोघवचनं ये च पुनः सत्यमौनशमशीलाः ॥ ६३ ॥

प्रः—कुलक्षयका क्या कारण है ?

उः—सज्जन महात्माओंको पहुँचाया हुआ कष्ट ।

प्रः—किनका अमोघ (यथार्थ) वचन है ?

उः—जो सत्य, मौन, एवं शम (मनका निग्रह) के स्वभाववाले हैं ।

किं जन्म विषयसंगः किमुत्तरं ब्रह्मबोधः स्यात् ।
कोऽपरिहार्यो मृत्युः कुत्र पदं विन्यसेच्च दृक्पूते ॥ ६४ ॥

प्रः—जन्म क्यों होता है ?

उः—विषयासक्ति होनेसे ।

प्रः—जन्मसे तरना यानी मुक्ति कैसे हो ?

उः—ब्रह्मज्ञानसे ।

प्रः—अपरिहार्य कौन है ?

उः—मृत्यु (कालदेवता) ।

प्रः—पाद (पैर) कहाँ रखना चाहिये ?

उः—दृष्टिसे पवित्र किये हुए मार्गमें ।

पात्रं किमन्नदाने क्षुधितं कोऽर्च्यो हि भगवदवतारः ।
कश्च भगवान्महेशः शङ्कर-नारायणात्मैकः ॥ ६५ ॥

प्रः—अन्नदानका पात्र (अधिकारी) कौन है ?

उः—जो क्षुधित (भूखा) हो ।

प्रः—अर्चा (पूजा) करने योग्य कौन है ?

उः—भगवदवतार श्रीराम-कृष्णादि ।

प्रः—भगवान् महेश्वर कौन है ?

उः—श्रीशङ्कर और श्रीनारायणका अभिन्नस्वरूप ।

फलमपि भगवद्भक्तेः किं तल्लोकस्वरूपसाक्षात्त्वम् ।
मोक्षश्च को ह्यविद्यास्तमयः कः सर्ववेदभूरथ चोम् ॥ ६६ ॥

प्र:—भगवद्भक्तिका फल क्या है ?

उ:—भगवान्के स्वरूपका साक्षात्कार ।

प्र:—मोक्ष क्या है ?

उ:—अविद्याका अत्यन्ताभाव ।

प्र:—सर्ववेदोंका सार क्या है ? ।

उ:—ॐकार ।

इत्येषा कण्ठस्था प्रश्नोत्तररत्नमालिका येषाम् ।
ते मुक्ताभरणा इव विमलाश्चाभान्ति सत्समाजेषु ॥ ६७ ॥

यह प्रश्नोत्तररत्नमालिका जिनके कण्ठमें स्थित है, वे मुक्ताके आभूषणकी तरह सत्पुरुषोंके समाजमें निर्मल होकर प्रकाशित होवेंगे।

॥ इति प्रश्नोत्तररत्नमालिका ॥

चर्पट-पञ्जरिका

एक समय आचार्य भगवान् श्रीशङ्करस्वामीजी श्रीकाशीमें गंगा-स्नान करनेको जा रहे थे। वहाँ एक बूढ़ा ब्राह्मण व्याकरणकी 'डुकृञ् करणे' धातुको याद कर रहा था। उसकी ऐसी शोचनीय दशा देखकर आचार्य श्रीशङ्करस्वामीने उसीसमय उसको उपदेश देना प्रारम्भ करदिया। वही उपदेश 'चर्पट—पञ्जरिका' नामसे संसारमें प्रसिद्ध हुआ। वह यह है—

भज गोविन्दं भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढ़मते !।
प्राप्ते सन्निहिते मरणे, नहि नहि रक्षति डुकृञ् करणे ॥ १ ॥

(ध्रुवपदम्)

हे मूढ़ बुद्धिवाले ! अब तू बूढ़ा होगया है, मृत्यु भी समीप ही है, मृत्युके समयमें 'डुकृञ् करणे' धातु तेरी रक्षा नहीं करेगा। अतः तू इस व्यर्थकी दन्त खटाखटको छोड़कर भगवान् श्रीगोविन्दका एकाग्रमनसे निरन्तर भजन कर। वृद्धावस्थामें हरिभजनको छोड़कर व्याकरणके पीछे पड़ना नितान्त मूर्खता है। मतलब यह है कि—श्रुति-स्मृति आदि शास्त्र पढ़नेमें व्याकरण उपयोगी है, परन्तु बुढ़ापेमें प्रथम कई वर्षोंतक व्याकरण पढ़े और फिर शास्त्र पढ़े इतना समय ही कहाँ है, ऐसी अवस्थामें जितना बन सके उतना श्रीहरि

का एकाग्रतासे भजन ही करना चाहिये, प्रभु-भजन ही संसार-सागरसे पार लगानेवाला है ।

बालस्तावत्क्रीडासक्तस्तरुणस्तावत्तरुणीरक्तः ।
वृद्धस्तावच्चिन्तामग्नः, परे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः ॥ २ ॥

हे मूढ़मते ! जब तू बालक था, तबतो खेल कूदमें ही लगा रहा यानी, खेल-कूदमें ही अपनी बाल्यावस्था फजूल खतम कर दी। जब तू जवान हुआ, तब तू जवान स्त्रीकी सेवामें ही आसक्त बनारहा, अर्थात् अपनी जवानी स्त्री-सेवामें ही लगा दी। और अब जब तू वृद्ध होगया, तब अनेक चिन्ताओंमें डूबा रहा यानी, 'व्याकरण आदिको परिश्रमसे पढ़कर, पण्डित बनकर धन आदि कमाकर फिर भी मैं स्त्री-पुत्रादिकोंका लालन पालन करूँ' इत्यादि अनेक मलिन चिन्ताओंसे ग्रसित होरहा है। परन्तु कभी तू ने उस परब्रह्म श्रीगोविन्दमें परम प्रेम नहीं किया। बड़े ही गज़बकी बात है कि—तू अपनी तीनों ही अवस्थामें सुख—शान्तिप्रद प्रभु-भजनको भूल गया, सदा संसारमें ही आसक्त बनारहा। हे मूर्ख ! अबतो चेतले, "गई सो गई अब राख रहीको" सावधान मनसे तू गोविन्दका निरन्तर भजन करले, तेरे तमाम पाप-ताप शान्त होजाँयेंगे।

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डम्, दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहित्वा दण्डम्, तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम्॥ ३॥

हे मूढ बुद्धिवाले ! तेरे तमाम हाथ पैर आदि अङ्ग गल गये हैं, यानी पैर और हाथोंकी खाल लटक रही है, हाथ काँप रहे हैं, पैर लथड़ाते हुए चलते हैं, आँखोंमें गड्ढे पड़ गये हैं, गाल बैठे हुये हैं, कानोंसे ऊँचा सुनाई देता है, पेट पीठको लग रहा है, इत्यादि। शिर, डाढी, मुच्छ आदिके तमामं बाल रुईके गालेके समान श्वेत होरहे हैं। मुख दाँतोंसे रहित पोपला होगया है, यानी मुखमें एक भी दाँत नहीं है। अब तू वृद्ध होकर काँपता हुआ लकड़ी टेक टेक कर चलता है, चलते चलते सांस भी फूल जाता है, बड़ी ही परेशानी भोग रहा है, तथापि तू सांसारिक आशाओंके पिण्डको छोड़ता नहीं है, एक मिनिट भी शान्त होकर उस प्रभुका भजन नहीं करता। हे मूर्ख ! क्यों आपही अपना शत्रु बन रहा है, मरनेके दिन नजदीक हैं, अबतो निश्चिन्त मनसे श्रीगोविन्दका भजन करले।

पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्,
पुनरपि जननीजठरे शयनम्।
इह संसारे खलु दुस्तारे,
कृपयाऽपारे पाहि मुरारे ! ॥ ४ ॥

हे मूढ़मते ! अनादि कालसे तूने बारंबार असंख्य जन्म लिया यानी अनेक ऊँच नीच शरीर धारण किया। असंख्य बार फिर फिर उसी ही भयङ्कर मृत्युको प्राप्त हुआ। और असंख्य माताओंके दुर्गन्धमय कष्टप्रद उदरोंमें सोया, यानी तूने इस असार संसारके

जन्म मरण एवं गर्भशयनरूपी चक्रमें असंख्य वार फँसकर महाकष्ट उठाया। हे मूढ़! अब तो तू इस संसार-चक्रसे छूटनेके लिये उस मुरारि भगवान्‌से प्रार्थना कर कि—हे मुरारि प्रभु! इस दुस्तर अपार संसार-सागरसे मेरा उद्धार करो, मैं एकमात्र आपके ही शरणमें हूँ। और हरदम उस कृपानिधि गोविन्द भगवान्‌का एकाग्र मनसे भजन कर।

दिनमपि रजनी सायं प्रातः,
शिशिर-वसन्तौ पुनरायातः।
कालः क्रीडति गच्छत्यायु-
स्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः॥ ५॥

क्रमशः बारम्बार दिन होता है और जाता है, रात होती है और जाती है, साम और सुबह होता है और देखते देखते ही चला जाता है, शिशिर वसन्त आदिक अनेक ऋतुयें बारम्बार आ आकर चल देती है, इस प्रकार काल भगवान्‌की विचित्र क्रीड़ा निरन्तर होती रहती है, और इससे आयु बरबाद होता जाता है, हाय! तथापि महान् खेदकी वात है कि—हे मूढ़मते! तू इस तुच्छ संसारकी आशारूपी पवनको छोड़ना नहीं चाहता। अरे, मूर्ख! काल देवताने तेरा बहुत कुछ तो अमूल्य आयु नष्ट कर दिया, अब बहुत ही थोड़ा आयु बच रहा है, उसको तो तू सार्थक बनाले, उसमें निरंन्तर गोविन्द भगवान्‌का भजन करले।

जटिलो मुण्डितलुञ्छितकेशः, काषायाम्बरबहुकृतवेषः ।
पश्यन्नपि न च पश्यति लोकः, उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः ॥ ६॥

पेट भरनेके लिये कभी तो शिरपर जटाएँ रखकर जटाधारी बना, कभी शिरके सम्पूर्ण बालोंको मुड़ाकर मुण्डी बना, कभी बालोंको नोंचकर जैन-साधु बना, कभी तो भगवाँ वस्त्र धारणकर संन्यासी बना इत्यादि अनेक प्रकारके वेष धारण किये, तथापि मूढ़ मनुष्य इस असार संसारकी क्षणभङ्गुरताको प्रत्यक्ष देखता हुआ भी मोह ममतामें फँसकर उसे वह नहीं देखता । मतलब यह है कि—इस शरीरादि प्रपञ्चकी रचना क्षणभङ्गुर जानता हुआ भी मोहवश इन्द्रियोंके लालन-पालनके लिये अनेक ढोंगकर अनर्थ कमाता हैं, और उस सत्य सनातन प्रभुको जानता हुआ भी उसका तिरस्कार करता है, यही बड़ी आश्चर्यकी बात है। अतः हे मूर्ख ! तमाम ढोंग एवं दम्भको छोड़कर एकमात्र उस गोविन्द भगवान्का सरल एवं निष्कपट हृदयसे भजन करनेमें क़टिबद्ध होजा ।

वयसि गते कः कामविकारः, शुष्के नीरे कः कासारः ।
क्षीणे वित्ते कः परिवारो, ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः ॥७॥

अवस्था चली जानेपर कामविकार-शक्ति नहीं रहती । पानी सूख जानेपर तालाब नहीं रहता। धन चले जानेपर परिवार नहीं रहता यानी स्त्री पुत्र आदि परिवारका स्नेह तबतक ही रहता है कि—जबतक उसके पास धन रहता है, जब धन नहीं रहता है तब परिवारका स्नेह भी कपूरकी

तरह उड़ जाता है। तैसे एक अखण्ड अद्वैतरूप गोविन्दका यथार्थ तत्त्व जाननेपर यह नामरूपात्मक क्लेशप्रद संसार नहीं रहता। इसलिये हे मूर्ख! उस तत्त्वके साक्षात्कारके लिये गोविन्दभगवान्‌का निरन्तर भजन कर।

अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू, रात्रौ चिबुकसमर्पितजानुः।
करतलभिक्षा तरुतलवासस्तदपि न मुञ्चत्याशापाशः॥ ८॥

तपस्वी होनेके कारण आगे अग्नि जलती है, पीछे धूप पड़ती है। एवं दिगम्बर-नग्न रहनेके कारण रातको घोंटुओंके बीचमें डाढ़ीको रखकर सोना पड़ता है। भिक्षा करनेका पात्र न होनेसे हाथ ही भिक्षापात्र बना है, बनवासी होनेके कारण पेड़के नीचे सोना पड़ता है। तथापि बड़ेही गज़बकी बात है कि—ऐसा तपस्वी विरक्त भी संसारके भोगविलासकी आशारूपी फाँसीको छोड़ना नहीं चाहता, अर्थात् विरक्तपना एवं तपस्वीपना तभी ही शोभा देता है कि—जब संसारकी तमाम आशाओंको छोड़कर एकमात्र गोविन्दभगवान्‌का एकाग्र मनसे परम श्रद्धाभक्तिपूर्वक भजन किया जाय। अतः हे मूर्ख! गोविन्दका भजन कर, जिससे तेरी तप एवं तितिक्षा सफल बनें।

यावद्वित्तोपार्जनसक्तस्तावन्निजपरिवारो रक्तः।
पश्चाज्जर्जरभूते देहे, वार्ता कोऽपि न पृच्छति गेहे॥ ९॥

जबतक मनुष्य धन कमानेमें समर्थ होता है, तबतक उसका परिवार-कुटुम्ब उससे स्नेह करता है, उसके आधीन रहता है।

और पीछे वृद्धावस्था आनेके कारण या रोगी होजानेके कारण शरीर निर्बल होजाता है, धन कमानेमें सामर्थ्य रहता नहीं है, तब घरके कुटुम्बीलोग उससे बाततक भी करना नहीं चाहते। अतः हे मूढ़मते ! इस स्वार्थी संसारके पीछे पागल मत बन, उससे स्नेह छोड़दे और निरन्तर गोविन्दप्रभुके भजनमें चित्तको जोड़दे, यही कल्याणका शान्त मार्ग है।

रथ्याचर्पटविरचितकंथः, पुण्यापुण्यविवर्जितपंथः।
न त्वं नाहं नायं लोकः. तदपि किमर्थं क्रियते शोकः ॥१०॥

मार्गमें पड़े हुए चीथड़ोंको बीनकर उनकी कन्था बनाकर उसको पहनता है, पुण्य एवं पापके मार्गको छोड़कर शुद्ध विरक्त मार्गमें बिचरता है, "तू नहीं, मैं नहीं और यह संसार भी नहीं है, किन्तु एकरस अखण्ड आत्मा ही है" ऐसा बोलता भी है। तथापि हे मूर्ख ! तू शोक क्यों करता है? अर्थात् विरक्त होनेपर भी अभीतक तेरे हृदयसे कामनारूपी डाकिनी पूर्णतया निकली नहीं है। जबतक उस डाकिनीका आवेश हृदयसे सर्वथा दूर न होजाय, तबतक आनन्दनिधि आत्माका पूर्ण-साक्षात्कार नहीं होता। और आत्मसाक्षात्कारके विना शोककी निवृत्ति नहीं होती। 'तरति शोकमात्मवित्' आत्माको अपरोक्ष जाननेवाला शोक नहीं करता। इसलिये हे मूढ-मते ! उस गोविन्द स्वरूप आत्माका निरन्तर भजन कर, ताकि-तेरे तुच्छ शोककी निवृत्ति होजाय।

नारीस्तनभरजघननिवेशं, दृष्ट्वा मिथ्यामोहावेशम्।
एतन्मांसवसादिविकारं मनसि विचारय वारंवारम् ॥११॥

हे मूढ़मते! नारीके पीन-स्तन और जघन (पेडू) की रचनाको देखकर क्यों व्यर्थ ही मोहका आवेश उत्पन्न कर विकारी बनता है। रे मूर्ख! इतना भी जानता नहीं है कि—ये स्तन, जघन आदि महा-मलीन, दुर्गन्धमय माँस चरबी आदि गन्दे पदार्थोंसे बने हैं, इस प्रकार तू उनकी मलीनताका मनमें वारंवार विचारकर, और शुद्ध-स्वरूप श्रीगोविन्दभगवान्का भजनकर, मोहावेशको शान्त करदे।

गेयं गीता नामसहस्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम्।
नेयं सज्जनसंगे चित्तं, देयं दीनजनाय च वित्तम् ॥१२॥

हे मूढमते! संसारके क्लेशप्रद गानको छोड़कर, गीता और विष्णुसहस्र नामका ही निरन्तर गानकर। संसारके ध्यानको त्यागकर भगवान् श्रीविष्णुका ही सदा ध्यान कियाकर। नीच विषयी पामरके संगको छोड़कर, सज्जन विद्वान् विरक्त महात्माओंके संगमें ही चित्तको लगादे। और दीन-दु:खी जनोंको ही दान दियाकर, और श्रीगोविन्दका निरन्तर भजनकर।

भगवद्गीता किञ्चिदधीता, गंगाजललवकणिका पीता।
येनाकारि मुरारेरर्चा, तस्य यमः किं कुरुते चर्चा ॥१३॥

जिसने भगवद्गीताका थोड़ा भी पाठ किया हो, जिसने थोड़ा भी गङ्गाजलका पान किया हो और जिसने मुरारि प्रभुकी पूजा की

हो, उसकी यमराज क्या चर्चा कर सकता है ? कदापि नहीं कर सकता। अतः हे मूढ़ ! यदि यमराजके भयङ्कर पाशसे छूटना हो तो गीताका पाठ कर, गङ्गाजलका पान कर एवं भगवान्‌की पूजा कर। और साथ ही परम मङ्गलमय गोविन्द भगवान्‌का भजन किया कर, यही संसारके कष्टोंसे छूटनेका परम उपाय है।

कोऽहं कस्त्वं कुत आयातः, का मे जननी को मे तातः।
इति परिभावय सर्वमसारं, सर्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम् ॥१४॥

'मैं कौन हूँ ?' 'तू कौन है ?' 'तू कहाँसे आया है ?' 'मैं कहाँसे आया हूँ ?' 'मेरी माता कौन है ?' 'मेरा पिता कौन है ?' इसका विचारकर, श्रेष्ठ महात्माओंसे उस विषयको पूछाकर। रे मर्ख ! यह तमाम शरीरादि-संसार स्वप्न-संसारके समान आसार है, न कोई किसीकी माता है, न पिता है, न कोई सम्बन्धी है, न शरीरादि भी हैं,। स्वप्नके समान केवल झूठा ख्याल है। अतः इस क्षणभङ्गुर-संसारको छोड़कर एकमात्र उस गोविन्द भगवान्‌का निश्चिन्त मनसे भजन कर।

का ते कान्ता कस्ते पुत्र, संसारोऽयमतीव विचित्रः।
कस्य त्वं वा कुत आयातः, तत्त्वं चिन्तय तदिदं भ्रातः ! ॥१५॥

तेरी स्त्री कौन है ? तेरा पुत्र कौन है ? यानी न कोई तेरी स्त्री है एवं न तो कोई तेरा पुत्र है, व्यर्थ ही उनमें ममता बढ़ाकर क्यों पागल हो रहा है ? यह संसार अत्यन्त विचित्र है, अर्थात्

कोई किसीका नहीं है, जो कुछ वस्तु देखनेमें आती है, वह कुछ कालके बाद अवश्य ही अदृश्य हो जायगी। अतः हे भाई ! तू किसका है और कहाँसे आया है? इसका विचार कर, यदि स्वयं विचार करनेमें असमर्थ हो तो विद्वान् विरक्त-महात्माओंके पास जाकरके इस विषयका विचार कर, और निरन्तर श्रीगोविन्दका भजन कर।

सुरतटिनीतरुमूलनिवासः, शय्याभूतलमजिनं वासः।
सर्वपरिग्रहभोगत्यागः, कस्य सुखं न करोति विरागः ॥१६॥

गङ्गा-किनारेके वृक्षकी मूलमें निवास करना, भूमिको ही शय्या बनाना, मृगचर्मको ही पहिननेके लिये वस्त्र समझना, तमाम स्त्री, पुत्र, धन, मकान आदि परिग्रहको छोड़ देना, और समस्त भोग-विलासकी इच्छाओंका त्याग करना ही वैराग्यका आभ्यन्तर एवं बाह्य दो प्रकारका स्वरूप है। ऐसा वैराग्य किसको निर्मल सुख नहीं देता? यानी सबको सुख देता है। अर्थात् विरक्त विद्वान् पुरुष जो कि महासुखी एवं सर्वथा निर्भय हैं, वही धन्य है। इसलिये हे मूढ़मते ! शुद्ध वैराग्यकी प्राप्तिके लिये उस श्रीगोविन्द भगवान्का भजन कर, भगवान्की कृपासे ही मनुष्य विरक्त एवं विद्वान् हो सकता है।

॥ इति चर्पट—पञ्जरिका ॥

मनीषा-पञ्चक

अवतरणिका

एक बार भगवान् भाष्यकार आचार्य श्रीशङ्कर स्वामी श्रीकाशी धाममें श्रीगंगाजीसे स्नान करके आ रहे थे। मार्गमें क्या देखा कि— सामनेसे एक चाण्डाल आ रहा है, मैले-कुचेले चीथडोंकी गुदड़ी पहिने हुए है, लम्बा कद है, लाल लम्बी डाढी है, बूढे होनेके कारण कुछ-कुछ श्वेत होगयी है, ऐसी ही लम्बी-लम्बी मूँछे हैं, हाथ में एक झाडू है, साथमें दो काले-काले कुत्ते हैं। भाष्यकार उसको देखकर बचने लगे। परन्तु जैसे आजकल ब्राह्मण आदिको देख-कर भङ्गी चमार आदि प्रायः बचते नहीं हैं; किन्तु भेटते हुए ही निकलते हैं। इसी प्रकार वह चाण्डाल भी बचा नहीं, किन्तु ज्यों-ज्यों भाष्यकार हटते जाय त्यों त्यों ऊपर ही चला आवे, जब भाष्यकार हटते ही चले गये और कुछ बोले नहीं तब वह इस प्रकार कहने लगा——

चाण्डाल—हे शङ्कर! क्यों हटता है? हटनेका क्या कारण है? क्या तू मुझमें और अपनेमें भेद समझता है? जैसा तेरा देह पाँचभूतोंका कार्य हड्डी-मांस आदिका बना हुआ है और मल-मूत्र आदिसे भरा हुआ है, ऐसा ही मेरा है, तेरे और मेरे देहमें कुछ भेद

नहीं है। तेरे और मेरे आत्मामें भी भेद नहीं है, क्योंकि आत्मा सबका एक है और शुद्धबुद्ध नित्यमुक्त निष्कल निरञ्जन अखण्ड एकरस है, इसलिये तुझमें और मुझमें भेद नहीं है। तूने मुझे डाँट नहीं बतायी यानी अपने समीप आनेसे मुझे न रोका, स्वयं ही बचता रहा, इससे तुझमें ब्राह्मण अथवा संन्यासीका लक्षण घटता है, क्योंकि ब्राह्मण और संन्यासीका शान्ति ही परम भूषण है, ऐसा विद्वानोंका मत है। परन्तु तू मुझसे हटता क्यों है? तेरे हटनेसे सिद्ध होता है कि—तुझमें भेदबुद्धि है, यदि ऐसा न हो तो तू मुझ से बचता नहीं। सुनता हूँ कि—तू शङ्करका अवतार है, शङ्कर तो समदर्शी हैं, ब्राह्मण, गाय, कुत्ते और चाण्डालको एक-सा देखते हैं, तुझमें भेदबुद्धि कहाँसे आयी? यदि तुझमें भेदबुद्धि है तो तू शङ्कर का अवतार नहीं है, बता तेरी बुद्धि यानी तेरा निश्चय क्या है?*

गुदड़ीमें लाल छुप नहीं सकते। आचार्य, चाण्डालकी कान्ति और भाषणसे समझ गये कि—यह सामान्य मनुष्य नहीं है, चाण्डाल

---

* इस घटनाके मूल श्लोक ये हैं—

सत्याचार्यस्य गमने, कदाचिन्मुक्तिदायकम्।
काशीक्षेत्रं प्रति सह गौर्या मार्गे तु शङ्करम्॥
अन्त्यवेषधरं दृष्ट्वा, गच्छ गच्छेति चाब्रवीत्।
शङ्करः सोऽपि चाण्डालस्तं पुनःप्राह शङ्करम्॥
अन्नमयादन्नमयमथवा चैतन्यमेव चैतन्यात्।
द्विजवर! दूरीकर्तुं वांछसि किं ब्रूहि गच्छ गच्छेति॥

के वेषमें विश्वनाथ मेरी परीक्षा लेने आये हैं। महात्माओंसे वाद-विवाद करना शिष्टाचारसे विरुद्ध है, ऐसा अपने मनमें विचार कर, भाष्यकार आचार्य श्रीशङ्कर स्वामी अपनी बुद्धिका परिचय नीचेका स्तोत्र पढ़ते हुए देने लगे—

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु स्फुटतरा या संविदुज्जृम्भते।
या ब्रह्मादिपिपीलिकान्ततनुषु प्रोता जगत्साक्षिणी॥
सैवाहं न च दृश्यवस्त्विति दृढप्रज्ञापि यस्यास्ति चेत्।
चाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम॥ १॥

अर्थ—जो संवित् (ज्ञानस्वरूप आत्मा) जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तिमें स्पष्टतर फैली हुई है। जो जगत्की साक्षिणी है, ब्रह्मासे लेकर चिंटी तकके शरीरोंमें प्रोई हुई है, वही मैं हूँ, दृश्य वस्तु देहादि मैं नहीं हूँ, ऐसी जिसकी दृढबुद्धि है, वह चाहे चाण्डाल हो या चाहे वह द्विज हो, वह तो मेरा गुरु ही है ऐसी मेरी मनीषा यानी बुद्धि है।

ब्रह्मैवाहमिदं जगच्च सकलं चिन्मात्रविस्तारितम्।
सर्वं चैतदविद्यया त्रिगुणयाऽशेषं मया कल्पितम्॥
इत्थं यस्य दृढा मतिः सुखतरे नित्ये परे निर्मले।
चाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम॥ २॥

अर्थ—मैं और यह समस्त जगत् ब्रह्म ही है, सर्वत्र चिन्मात्र ही फैला हुआ है और यह सर्व अशेष संसार तीन गुणवाली

अविद्यासे मैंने कल्पा है; इस प्रकार सुखतर, नित्य, निर्मल, परमात्मामें जिसकी स्थिर एवं दृढ़ बुद्धि है, वह चाण्डाल हो, चाहे द्विज हो, वह गुरु है, ऐसी मेरी बुद्धि है।

शश्वन्नश्वरमेव विश्वमखिलं निश्चित्य वाचा गुरो-
र्नित्यं ब्रह्म निरन्तरं विमृशता निर्व्याजशान्तात्मना॥
भूतं भावि च दुष्कृतं प्रदहता संविन्मये पावके।
प्रारब्धाय समर्पितं स्ववपुरित्येषा मनीषा मम॥ ३॥

अर्थ—निष्कपट शान्त मनवाले नित्य ब्रह्मका निरन्तर विचार करनेवाले, गुरुकी वाणीसे यह सब नामरूपात्मक विश्व सदा नाशवान् है, मिथ्या है, ऐसा निश्चय करके अतीत एवं अनागत पापोंको जिसने ज्ञानमय अग्निमें जला दिया है, और अपना शरीर प्रारब्धको अर्पण कर दिया है, वह गुरु है ऐसी मेरी बुद्धि है।

या तिर्यङ्नरदेवताभिरहमित्यन्तः स्फुटा गृह्यते।
यद्भासा हृदयाक्षदेहविषया भान्ति स्वतोऽचेतनाः॥
तां भास्यैः पिहितार्कमण्डलनिभां स्फूर्तिं सदा भावयन्।
योगी निर्वृतमानसो हि गुरुरित्येषा मनीषा मम॥ ४॥

अर्थ—जो स्फूर्ति (सत्ता) तिर्यक् नर देवताओंसे 'अहं' रूपसे हृदयके भीतर स्पष्ट ग्रहण की जाती है, जिसके प्रकाशसे स्वयं अचेतन हृदय, इन्द्रियाँ, देह और विषय भासते हैं, सूर्य-

मण्डलके समान देहादि प्रकाश्योंसे ढकी हुई स्फूर्तिकी सदा भावना करता हुआ सुखी मनवाला योगी ही गुरु है, ऐसी मेरी बुद्धि है।

यत्सौख्याम्बुधिलेशलेशत इमे शक्रादयो निर्वृता।
यच्चित्ते नितरां प्रशान्तकलने लब्ध्वा मुनिर्निर्वृतः॥
यस्मिन्नित्यसुखाम्बुधौ गलितधीर्ब्रह्मैव न ब्रह्मवित्।
यः कश्चित् स सुरेन्द्रवन्दितपदो नूनं मनीषा मम॥ ५॥

अर्थ—जिस सुखरूप समुद्रके अंशके अंशसे ये इन्द्रादि सुखी होते हैं, अत्यन्त शान्तवृत्तिवाले चित्तमें जिसको प्राप्त करके मुनि सुखी हुआ जिस नित्य सुख समुद्रमें लीन हुई बुद्धिवाला ब्रह्मवित् नहीं है, किन्तु साक्षात् ब्रह्म ही है, वह जो कोई भी हो, सुरेन्द्रसे वन्दित पदवाला है, यानी सुरेन्द्र उसके चरणोंकी वन्दना करता है, निश्चय मेरी ऐसी बुद्धि है।

आचार्य भाष्यकारके इस कथनसे यह अभिप्राय प्रकट होता है कि—'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' इस श्रुतिके अनुसार ब्रह्मज्ञानीके लिये विधि-निषेध आदि कोई कर्तव्य नहीं है, वह सबका गुरु है, फिर भी चाहे आप हो, चाहे मैं होऊँ, जिन्होंनें जीवके हितके लिये शरीर धारण किया है, यदि वे विधिमें प्रवृत्त हों और निषेधसे निवृत्त हों, तो भी उनकी क्या हानि है? जैसा कि—भगवान्ने गीतामें कहा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते, लोकस्तदनुवर्तते ॥
न मे पार्थाऽस्ति कर्तव्यं, त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं, वर्त एव च कर्मणि ॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते, मनुष्याः पार्थ ! सर्वशः ॥
उत्सीदेयुरिमे लोका, न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥

(गीता ३ । २१–२२–२३–२४)

इसलिये शिष्टाचारके अनुसार मैं आपसे हटकर यानी बचकर चला हूँ, ऐसा न करूँ तो मैं लोकका हित न करके अहित करनेवाला ठहरूँ । लोकमें भी ऐसा कहा है कि–'जैसा देश वैसा वेष' इस न्यायसे भी मैंने उचित ही किया है, अनुचित नहीं किया है। आप तो सबके गुरु सर्वज्ञ हैं ही, तब आपसे अधिक क्या कहूँ, आप सब जानते ही हैं ।

चाण्डालरूप भगवान् विश्वनाथ इतना सुनकर एवं प्रसन्न होकर आचार्य श्रीशंकरके प्रति 'आपका मत प्रामाणिक एवं श्रद्धेय होगा' ऐसा कहकर अदृश्य होगये ।

॥ इति मनीषा-पञ्चक ॥

मोह-मुद्गर

मूढ़! जहीहि धनागमतृष्णां, कुरु सद्बुद्धिं मनसि वितृष्णाम्।
यल्लभसे निजकर्मोपात्तं वित्तं तेन विनोदय चित्तम्॥ १॥

हे मूढ़! धन-प्राप्तिकी तृष्णाको छोड़ दे, मनमें संतोष रख और सद्बुधिको धारण कर, तेरे कर्मके अनुसार न्यायसे तुझे जो कुछ धन प्राप्त हो, उससे ही चित्तको शान्त कर सर्वदा प्राप्त हो यानी यदृच्छालाभ संतुष्ट होकर सर्वदा प्रसन्न रहा कर।

अर्थमनर्थं भावय नित्यं, नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः, सर्वत्रैषा कथिता नीतिः॥ २॥

स्त्री, पुत्र, धन, मकान आदि पदार्थ राग द्वेष आदि महा अनर्थ करनेवाले हैं, ऐसी तू निरन्तर भावना कियाकर। उन पदार्थोंसे तनिक भी सुख नहीं हो सक्ता है, ऐसा तू निश्चय रूपसे समझ, यानी उनमें तू सुखबुद्धिका परित्याग कर। धनवालोंको, बदमाश-गुण्डोंकी तो बात ही क्या किन्तु अपने पुत्रसे भी भय बना रहता है, ऐसा नियम सब जगह पाया जाता है। और विवेकी लोग कहते भी हैं।

मा कुरु धनजनयौवनगर्वं, हरति निमेषात्कालः सर्वम्।
मायामयमिदमखिलं हित्वा, ब्रह्मपदं प्रविशाशु विदित्वा॥ ३॥

हे मूर्ख ! धनका, स्त्री पुत्र आदि स्वजनोंका, एवं जुवानीका गर्व मतकर । याद रख, इन सबको एकही क्षणमें कालदेवता नष्ट कर देता है, मायामय इस नामरूपात्मक मिथ्या जगत्को छोड़ दे । सद्गुरुके द्वारा ब्रह्मस्वरूप आत्माको जानकर उसमें ही शीघ्र प्रवेश कर, यानी अनात्मचिन्तनको छोड़कर एकमात्र आत्मतत्त्वका ही निरन्तर चिन्तन कर ।

नलिनीदलगतजलवत्तरलं, तद्वज्जीवनमतिशयचपलम् ।
क्षणमपि सज्जनसंगतिरेका, भवति भवार्णवतरणे नौका ॥ ४ ॥

कमल-पत्रके ऊपर रहे हुए जलके समान यह जीवन अत्यन्त ही चंचल है, क्षणिक है यानी जीवनके एकक्षणका भी विश्वास नहीं किया जा सकता । अतः इस क्षणिक असार जीवनमें सत्संगति ही सार है, एक क्षणमात्रकी सज्जन विरक्त विद्वानोंकी संगति भी संसाररूपी सागरके तरनेको नौकारूप है ।

यावज्जननं तावन्मरणं, तावज्जननी जठरे शयनम् ।
इति संसारे स्फुटतरदोषे, कथमिव मानव ! तव संतोषः ॥ ५ ॥

जबतक जन्मना है, तबतक मरना है, यानी मरनेके लिये ही जन्म लिया जाता है और तबतक माताके गन्दे उदरमें सोना भी पड़ता है । इस प्रकार प्रत्यक्ष दोषवाले महाअनर्थरूप असार संसार में हे मूर्ख मनुष्य ! तुझको कैसे सन्तोष हो रहा है, अर्थात् तू इस संसारसे सन्तुष्ट होकर उसमें ही क्यों आसक्त बना बैठा है ।

कामं क्रोधं मोहं लोभं, त्यक्त्वाऽऽत्मानं भावय कोऽहम्।
आत्मज्ञानविहीना मूढास्ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः ॥ ६ ॥

काम, क्रोध, लोभ एवं मोहका परित्यागकर 'मैं कौन हूँ' इस प्रकार आत्माकी खोजकर, याद रख कि—आत्मज्ञानसे रहित मूढ़ मनुष्य घोर नरकमें सर्वदा पच-पचकर महादुःखी होते रहते हैं।

सुरमंदिरतरुमूलनिवासः, शय्या भूतलमजिनं वासः।
सर्वपरिग्रहभोगत्यागः, कस्य सुखं न करोति विरागः ॥ ७ ॥

एकान्त देवमन्दिरमें या वृक्षके मूलमें निवास करना, पृथ्वी को शय्या बनाना एवं मृगचर्मको वस्त्र बनाकर पहिनना और स्त्री, पुत्र, धन, मकान आदि सभी प्रकारके परिग्रहको छोड़ देना, तथा हृदय से भोग-वासनाका सर्वथा परित्याग करना, यही वैराग्यका सच्चा स्वरूप है। ऐसा निर्मल वैराग्य किसको सुख नहीं देता, यानी सब को सुख देता है, वैराग्य ही निर्मल सुखका सच्चा साधन है।

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ, मा कुरु यत्नं विग्रहसंधौ।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं, वाञ्छस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम् ॥ ८ ॥

यदि तू शीघ्र ही उस आनन्दनिधि परम निर्भय विष्णुपदको प्राप्त करना चाहता है तो शत्रु, मित्र, पुत्र एवं बन्धुवर्गके साथ यानी संसारकी तमाम वस्तुओंके साथ विग्रह यानी द्वेष एवं सन्धि यानी राग-आसक्तिके लिये यत्न मत कर। सब जगह सभी वस्तुओं में समचित्तवाला हो, अर्थात् सर्वत्र तू एक आनन्दरूप चेतनतत्त्व

को ही देखाकर, जिससे विष्णुपद प्राप्तिके लिये प्रतिबन्धक रागद्वेष होने ही न पावे।

त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्व्यर्थं कुप्यसि सर्वसहिष्णुः।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं, सर्वत्रोत्सृज भेदाज्ञानम् ॥९॥

तुझमें, मुझमें ओर अन्य सभी ही स्थानोंमें एवं तमाम वस्तुओं में एक ही सर्वव्यापक विष्णु विद्यमान है, ऐसा निश्चय कर। व्यर्थ ही क्यों किसीसे नाराज होकर तू क्रोध करता है, तितिक्षु बन। याद रख कि-विष्णुके सिवाय और कोई वस्तु है ही नहीं, अतः सभी ही पदार्थोंमें एक विष्णुरूप आत्माको देखाकर, और सर्वत्र भेद-रूपी अविद्याको छोड़ दे।

प्राणायामं प्रत्याहारं नित्यानित्यविवेकविचारम्।
जाप्यसमेतसमाधिविधानं, कुर्ववधानं महदवधानम् ॥१०॥

योगी ब्रह्मनिष्ठ गुरुओंके उपदेशानुसार बड़ी ही सावधानीसे प्राणायाम एवं प्रत्याहारका अभ्यास कर, और नित्यानित्य वस्तुका विवेक एवं सत्यासत्त्वका निरन्तर विचार कर और जाप्यसहित समाधि का विधान भी महाप्रयत्नसे सम्पादन कर।

अष्टकुलाचलसप्तसमुद्राः, ब्रह्मपुरंदरदिनकररुद्राः।
न त्वं नाहं नायं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः ॥११॥

सबसे बड़े आठ कुचालक पर्वत, क्षारोदधि क्षीरोदधि आदि सात समुद्र, ब्रह्मा इन्द्र सूर्य रुद्र आदि बड़े-बड़े देवता एवं तू मैं

और यह समस्त चतुर्दश भुवनरूपी लोक समुदाय भी नहीं रहेगा, एक रोज भर मिट जायगा, यानी यह तमाम दृश्य प्रपञ्च क्षणभंगुर विनाशी एवं मिथ्या है, तथापि हे मूढ़ ! किसके लिये तू शोक करता है, क्यों हाय-हायकी होली हृदयमें मचाता रहता है, विचार कर शोकका अवसर ही कहाँ है।

सुखतः क्रियते रामाभोगः, पश्चाद्धन्त शरीरे रोगः।
यद्यपि लोके मरणं शरणं तदपि न मुञ्चति पापाचरणम् ॥१२॥

हे मूढ़ ! प्रथम तो तू सुखबुद्धिसे बड़ी भारी उद्दण्डताके साथ निर्मयाद स्त्री-भोग करता है, और पीछे तेरे शरीरमें बड़ा भारी रोग हो जाता है, इससे दुःखी होकर रोता है, चिल्लाता है। हे मूर्ख ! यद्यपि तू जानता है कि—इस मर्त्यलोकमें अन्ततोगत्वा सबका मरण ही शरण है, मृत्युके विकराल पाशसे कोई नहीं बचने पाता, तथापि बड़ी ही लज्जाकी बात है कि—तू पापाचरणको छोड़ना नहीं चाहता।

यावज्जीवो निवसति देहे, कुशलं तावत्पृच्छति गेहे।
गतवति वायौ देहापाये, भार्या बिभ्यति तस्मिन्काये ॥१३॥

जबतक इस मलमूत्रके पात्ररूपी देहमें जीवात्मा निवास करता है तबतक घरवाले सम्बन्धी लोग इस शरीरकी कुशलताको पूछते हैं, जब प्राणवायु इस शरीरसे निकल गया और यह शरीर मुरदा बन गया, तब इसे देखकर निरन्तर प्रेम करनेवाली स्त्रियाँ भी डर जाती है, उससे मुख सिकुड़ लेती है, एक क्षणके लिये भी

उसके पास बैठना नहीं चाहती। अतः हे मूर्ख! अभीसे ही तू क्यों सावधान नहीं होता, इस तुच्छ शरीरसे एवं इस शरीरके स्वार्थी सम्बन्धियोंसे मोहममताको क्यों नहीं छोड़ता। आखिर जूते खाकर छोड़ेगा तो अवश्य ही।

गुरुचरणाम्बुजनिर्भरभक्तः संसारादचिराद्भव मुक्तः।
सेन्द्रियमानसनियमादेव द्रक्ष्यसि निजहृदयस्थं देवम् ॥१४॥

श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ सद्‌गुरुओंके चरणकमलोंका अनन्यभक्त बन। बड़ी ही श्रद्धाके साथ उनके सदुपदेशोंको ग्रहणकर शीघ्र ही इस असार-संसारके मोहममतामय बन्धनोंसे मुक्त होजा। विश्वास रख, इन्द्रिय एवं मनके संयमसे-एकाग्रतासे तू अपने हृदयमें साक्षीद्रष्टारूप से रहनेवाले उस स्वप्रकाश सर्वात्मा भगवान्‌का साक्षात्कार कर लेगा।

॥ इति मोह-मुद्गर ॥

ब्रह्मज्ञानावलीमाला

सकृच्छ्रवणमात्रेण ब्रह्मज्ञानं यतो भवेत् ।
ब्रह्मज्ञानावलीमाला सर्वेषां मोक्षसिद्धये ॥ १ ॥

जिसके एक वार श्रवणमात्रसे अधिकारीको ब्रह्मज्ञान होजाता है। ऐसी 'ब्रह्मज्ञानावलीमाला' सभी अधिकारियोंके मोक्ष-सिद्धिके लिये मैं आचार्य शङ्कर वनाता हूँ ।

असङ्गोऽहमसङ्गोऽहमसङ्गोऽहं पुनः पुनः ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ २ ॥

'मैं असङ्ग हूँ' 'मैं असङ्ग हूँ' 'मैं असङ्ग हूँ' 'मैं अव्यय हूँ' 'मैं सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ' ऐसी पवित्र भावना अधिकारियोंको वार-वार करनी चाहिये ।

नित्यशुद्धविमुक्तोऽहं निराकारोऽहमव्ययः ।
भूमानन्दस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ ३ ॥

'मैं नित्य हूँ' 'मैं शुद्ध हूँ' 'मैं विमुक्त हूँ' 'मैं निराकार हूँ' 'मैं अव्यय हूँ' 'मैं भूमानन्दस्वरूप हूँ' 'मैं अव्यय हूँ'—

नित्योऽहं निरवद्योऽहं निराकारोऽहमच्युतः ।
परमानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ ४ ॥

मैं नित्य हूँ, सकल अविद्यादि दोष रहित हूँ, निराकार हूँ, अच्युत हूँ, मैं परम आनन्दस्वरूप हूँ, अव्यय हूँ।

शुद्धचैतन्यरूपोऽहमात्मारामोऽहमेव च।
अखण्डानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ ५ ॥

मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ, मैं आत्माराम हूँ, मैं अखण्डानन्द-स्वरूप हूँ, मैं अव्यय हूँ।

प्रत्यक्चैतन्यरूपोऽहं शान्तोऽहं प्रकृतेः परः।
शाश्वतानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ ६ ॥

मैं प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप हूँ, प्रकृतिसे पर हूँ, शान्त हूँ, अचल अखण्डआनन्दस्वरूप हूँ, अव्यय हूँ।

तत्त्वातीतः परात्माऽहं मध्यातीतः परः शिवः।
मायातीतः परं ज्योतिरहमेवाहमव्ययः ॥ ७ ॥

जो चतुर्विंशतितत्त्वोंसे अतीत परमात्मा है—सो मैं हूँ, जो संसारके मध्यसे अतीत है एवं संसारका मूल कारण माया से भी अतीत, स्वयंज्योति, सबसे श्रेष्ठ कल्याणस्वरूप अव्ययतत्त्व है—सो मैं हूँ।

नानारूपव्यतीतोऽहं चिदाकारोऽहमच्युतः।
सुखरूपस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ ८ ॥

मैं अनेक रूपसे रहित एक-अद्वयस्वरूप हूँ, चैतन्यस्वरूप अच्युत हूँ, विशुद्ध एकरस सुखरूप हूँ, अव्यय-अविनाशी हूँ।

मायातत्कार्यदेहादि, मम नास्त्येव सर्वदा।
स्वप्रकाशैकरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ ९ ॥

माया और मायाका कार्य देहादि प्रपञ्च, मुझ विशुद्धस्वरूपमें तीन कालमें भी नहीं है, मैं एकमात्र सदा स्वयं प्रकाशस्वरूप हूँ, अव्यय-अविकारी हूँ।

गुणत्रयव्यतीतोऽहं ब्रह्मादीनां च साक्ष्यहम्।
अनन्तानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ १० ॥

मै तीन गुणोंसे रहित हूँ, ब्रह्मादि देवोंका भी साक्षी-द्रष्टा हूँ, अनन्त-आनन्दस्वरूप अव्यय हूँ।

अन्तर्यामिस्वरूपोऽहं कूटस्थः सर्वगोऽस्म्यहम्।
परमात्मस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ ११ ॥

मैं अन्तर्यामीस्वरूप हूँ, कूटस्थ हूँ, सर्वव्यापक हूँ, परमात्म-स्वरूप अव्यय-अविनाशी हूँ।

निष्कलोऽहं निष्क्रियोऽहं सर्वात्माद्यः सनातनः।
अपरोक्षस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ १२ ॥

मैं षोडशकलाओंसे रहित हूँ, क्रियासे रहित हूँ, सर्वका आत्मा हूँ, सबका मूल कारण सनातन-तत्त्व हूँ, अपरोक्षस्वरूप अव्यय-अविनाशी हूँ।

द्वंद्वादिसाक्षिरूपोऽहमचलोऽहं सनातनः ।
सर्वसाक्षिस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥१३॥

मैं सुख-दुःखादि यावत् द्वन्द्वोंका साक्षी हूँ, अचल हूँ, सनातन हूँ, सर्वका साक्षी अव्यय-अविनाशी हूँ ।

प्रज्ञानघन एवाहं विज्ञानघन एव च ।
अकर्ताहमभोक्ताहमहमेवाहमव्ययः ॥ १४ ॥

मैं प्रज्ञानघन हूँ, विज्ञानघन हूँ, अकर्ता हूँ, अभोक्ता हूँ, अव्यय-अविनाशी हूँ ।

निराधारस्वरूपोऽहं सर्वाधारोऽहमेव च ।
आप्तकामस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ १५ ॥

मैं स्वयं निराधार स्वरूप हूँ यानी मेरा कोई भी आधार नहीं है, तथापि मैं सर्वका आधार-अधिष्ठान हूँ, आप्तकाम-पूर्णतृप्तस्वरूप अव्यय-अविनाशी हूँ ।

तापत्रयविनिर्मुक्तो देहत्रयविलक्षणः ।
अवस्थात्रयसाक्ष्यस्मि चाहमेवाहमव्ययः ॥ १६ ॥

मैं आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक ये तीन तापोंसे सदा विमुक्त हूँ, स्थूल-सूक्ष्म एवं कारण ये तीन देहोंसे विलक्षण-असङ्ग हूँ, जाग्रत-स्वप्न एवं सुषुप्ति ये तीन अवस्थाओंका साक्षी अव्यय-अविनाशी हूँ ।

दृग्दृश्यौ द्वौ पदार्थौ स्तः परस्परविलक्षणौ ।
दृग्ब्रह्म दृश्यं मातरि, सर्ववेदान्तडिण्डिमः ॥ १७ ॥

विश्वमें दृक् एवं दृश्य यानी जड और चेतन ये दो पदार्थ हैं, ये दोनों परस्पर विलक्षण हैं, यानी एक चेतन पदार्थ सत्य एवं सर्वाधिष्ठान है और जडपदार्थ मिथ्या एवं अध्यस्त है । दृक्पदार्थको ब्रह्म कहते हैं और दृश्यको माया कहते हैं, यही तमाम उपनिषदों का डिण्डिम-घोष है ।

अहं साक्षीति यो विद्याद्विविच्यैवं पुनः पुनः ।
स एव मुक्तः स विद्वानिति वेदान्तडिण्डिमः ॥ १८ ॥

मैं साक्षी हूँ साक्ष्य देहादि नहीं हूँ इस प्रकार जो देहादि-प्रपञ्चसे अपने शुद्ध स्वरूपको पृथक्-असङ्ग जानता है, एवं स्वस्व-रूपका वारम्बार चिन्तन करता है । वही मुक्त है एवं विद्वान् है, ऐसा वेदान्तका निर्दोष डिण्डिम-घोष है ।

घटकुड्यादिकं सर्वं मृत्तिकामात्रमेव च ।
तद्वद्ब्रह्म जगत्सर्वमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥ १९ ॥

जैसे घट-कुड्य (दिवाल) आदि सब कुछ मृत्तिका स्वरूप है, तद्वत् यह दृश्यमान सर्व जगत् ब्रह्मस्वरूप है; क्योंकि कारणसे कार्य पृथक् नहीं होता है । इसलिये अधिकारी-साधकको चाहिये कि—वह नामरूपात्मक तुच्छ भावनाको छोड़कर ब्रह्ममयी उदार-भावना का निरन्तर अभ्यास करता रहे ।

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः ।
अनेन वेद्यं सच्छास्त्रमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥ २० ॥

एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है, यह तमाम दृश्यमान नामरूपात्मक जगत् मिथ्या है, जीव ब्रह्म ही है, ब्रह्मसे पृथक् नहीं है, यही सच्छास्त्रोंका पवित्र जानने योग्य सच्चा सिद्धान्त है एवं यही सर्व उपनिषदोंका डिण्डिम-घोष है ।

॥ इति ब्रह्मज्ञानावलीमाला ॥

विज्ञान-नौका

(भुजङ्गप्रयात छन्द)

तपोयज्ञदानादिभिः शुद्धबुद्धि-
विरक्तो नृपादौ पदे तुच्छबुद्ध्या ।
परित्यज्य सर्वं यदाप्नोति तत्त्वं,
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ १ ॥

तप, यज्ञ, दान आदि शुभकर्मसे जिसका अन्तःकरण मल-रहित शुद्ध हुआ है, सांसारिक दृष्टिसे जो सर्वोत्तम है, ऐसे राजा-सम्राट् आदिके ऐश्वर्यसे भी जो सुतरां विरक्त है, यानी ऐसे ऐश्वर्यमें

भी जिसकी तुच्छ-बुद्धि है। ऐसा अधिकारी-मुमुक्षु, देहादि अनात्म-वर्गका परित्यागकर जिस तत्त्वको प्राप्तकर लेता है, वह परब्रह्म नित्य-तत्त्व मैं ही हूँ।

दयालुं गुरुं ब्रह्मनिष्ठं प्रशान्तं,
समाराध्य भक्त्या विचार्य स्वरूपम्।
यदाप्नोति तत्त्वं निदिध्यास्य विद्वान्,
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ २ ॥

दयालु, ब्रह्मनिष्ठ, प्रशान्त सद्गुरुकी भक्तिपूर्वक अच्छी प्रकार से आराधना करके शुद्ध स्वरूपका विचारकर एवं निदिध्यासन करके जिस शुद्ध-तत्त्वको विद्वान् प्राप्त होता है, वह परब्रह्म नित्य-तत्त्व मैं ही हूँ।

यदानन्दरूपं प्रकाशस्वरूपं,
निरस्तप्रपञ्चं परिच्छेदशून्यम्।
अहं ब्रह्मवृत्त्यैकगम्यं तुरीयं,
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ ३ ॥

जो विशुद्ध-अखण्ड आनन्दस्वरूप है, स्वयंप्रकाश ज्ञानस्वरूप है, नामरूपात्मक द्वैतप्रपञ्चका जिसमें अत्यन्ताभाव है, जो देश काल वस्तुकृत परिच्छेदसे रहित है, यानी जो सर्वव्यापक त्रिकालाबाध्य सर्वात्म वस्तु है, 'अहं ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूँ, इस महावाक्यजन्य अखण्ड ब्रह्माकार वृत्तिसे जो जानने योग्य है, एवं जो जाग्रत् आदि

तीनों अवस्थाओंका साक्षी-द्रष्टा चेतनतत्त्व है, वह परब्रह्म नित्य-तत्त्व मैं हूँ।

यदज्ञानतो भाति विश्वं समस्तं,
विनष्टं च सद्यो यदात्मप्रबोधे।
मनोवागतीतं विशुद्धं विमुक्तं,
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ ४ ॥

जिस परब्रह्म-तत्त्वके अज्ञानसे, यानी अघटघटनापटीयसी अनिर्वचनीय मायाशक्तिसे यह नामरूपात्मक समस्त द्वैतप्रपञ्च भासता है, जिस ब्रह्मात्मस्वरूपके साक्षात्कारसे यह द्वैतप्रपञ्च अज्ञान सहित शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, जो तत्त्व मन-वाणीका अगोचर यानी अविषय है, अत्यन्त शुद्ध एवं नित्य-मुक्त है, वह परब्रह्म नित्यतत्त्व मैं ही हूँ।

निषेधे कृते नेतिनेतीति वाक्यैः,
समाधिस्थितानां यदाभाति पूर्णम्।
अवस्थात्रयातीतमेकं तुरीयम्,
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ ५ ॥

'नेति' 'नेति' यह नहीं, यह नहीं, अर्थात् जो मूर्त नहीं है एवं अमूर्त भी नहीं है, इस प्रकारके श्रुतिवाक्योंसे जिसमें तमाम द्वैतप्रपञ्चका निषेध करनेपर, जो परिपूर्ण अखण्ड आनन्दात्म-

स्वरूप निर्विकल्प समाधिमें स्थित योगियोंको साक्षात् प्रकाशता है, जो तीनों अवस्थाओंसे अतीत, तुरीय-साक्षी है, वही नित्यतत्त्व परब्रह्म मैं हूँ।

यदानन्दलेशैः समानन्दि विश्वं,
यदाभाति सत्त्वे तदाभाति सर्वम्।
यदालोचने रूपमन्यत्समस्तं,
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ ६ ॥

जिस प्रशान्त आनन्द-महासागरके थोड़ेसे आनन्दको लेकर यह समस्त विश्व कामादिजन्य तुच्छ आनन्दवाला होता है, देहादि अनात्मवर्गमें जब जिसकी सत्ता-स्फूर्ति आती है, तब ही सब सत्ता स्फूर्ति से दिखाई देते हैं। अन्य समस्त रूप, जिसके अखण्ड ज्ञान-रूपी नेत्रसे भासित होते हैं, वही नित्यतत्त्व परब्रह्म मैं ही हूँ।

अनन्तं विभुं सर्वयोनिं निरीहं,
शिवं संगहीनं यदोंकारगम्यम्।
निराकारमत्युज्ज्वलं मृत्युहीनम्,
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ ७ ॥

जो अनन्त (अन्त रहित) विभु (व्यापक) सर्वका कारण, चेष्टा रहित शिव (कल्याण) स्वरूप, असंग-निर्लेप है, जो

ॐकारकी उपासनासे जानने योग्य हैं, जो निराकार अत्यन्त शुद्ध स्वयंप्रकाश मृत्यु रहित है। वह परब्रह्म नित्यतत्त्व मैं ही हूँ।

यदानन्दसिन्धौ निमग्नः पुमान्स्या—
दविद्याविलासः समस्तः प्रपञ्चः।
तदा न स्फुरत्यद्भुतं यन्निमित्तं,
परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ ८ ॥

जब अधिकारी (साधनचतुष्टय सम्पन्न) मनुष्य, अखण्डानन्द महासागररूप स्वस्वरूपमें निमग्न यानी तल्लीन होता है, तब अविद्यासे ही जिसका भान होता है, ऐसा समस्त प्रपञ्च उस तीन कालमें भी नहीं भासता है, इस प्रकार जिसके ज्ञानका प्रभाव आश्चर्ययुक्त है, वही परब्रह्म नित्य-तत्त्व मैं हूँ।

स्वरूपानुसंधानरूपां स्तुतिं यः,
पठेदादराद्भक्तिभावो मनुष्यः।
शृणोतीह वा नित्यमुद्युक्तचित्तो,
भवेद्विष्णुरत्रैव वेदप्रमाणात् ॥ ९ ॥

स्वस्वरूपका अनुसंधान रूप इस स्तुतिको जो मनुष्य, आदर पूर्वक पूर्ण भक्ति-भावसे पढ़ता है, अथवा दत्तचित्त होकर जो प्रतिदिन सुनता है, वह वेदके स्वतःनिर्दोष प्रमाणसे यहाँ ही जीवितावस्थामें ही विष्णुस्वरूप होजाता है।

विज्ञाननावं परिगृह्य कश्चि,- त्तरेद्यदज्ञानमयं भवाब्धिम् ।
ज्ञानासिना योहि विच्छिद्य तृष्णां, विष्णोः पदं याति स एव धन्यः॥
(उपजाति वृत्तम्)

जो विज्ञानरूपी नौकाको ग्रहण करके, ज्ञानरूपी तलवारसे तृष्णाको काटकर अज्ञानरूपी संसारसमुद्र तर जाता है और विष्णुके परम-पदको प्राप्त करता है, वही धन्य है ।

॥ इति विज्ञान-नौका ॥

वैदिक शान्तिपाठ

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः । शं नो भवत्वर्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः । शं नो विष्णुरुरुक्रमः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि । ऋतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु । अवतु माम् । अवतु वक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्ति ॥१॥
(यजुर्वेद-तैत्ति० १।१।१)

ॐ मित्र (दिवसके अभिमानी देवता सूर्य-भगवान्) हमारे लिये सुख देनेवाला होवे । वरुण (रात्रिके अभिमानी देवता या

जलके अधिष्ठातृ देवता) हमारे लिये सुख देनेवाला होवे । अर्यमा (पितरोंका अधिष्ठातृ देवता) हमारे लिये सुख देनेवाला होवे । इन्द्र (हाथ और बलका देवता देवराज) हमारे लिये सुख देने-वाला होवे । बृहस्पति (वाणी और बुद्धिका देवता) हमारे लिये सुख देनेवाला होवे । विस्तीर्णपाद वाला विष्णु भगवान् हमारे लिये सुख देवेवाला होवे । ब्रह्मके लिये नमस्कार है । हे वायो ! आपको नमस्कार है । आप ही प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं । आपको ही मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा । यथार्थ कहूँगा । सत्य कहूँगा । वह ब्रह्म मेरी रक्षा करे । वह वेदवक्ता आचार्यकी रक्षा करे। मेरी रक्षा करे। आचार्य की रक्षा करे । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः, यानी आध्यात्मिक आधिभौतिक एवं आधिदैविक ये तीन तापोंकी निवृत्ति हो ॥

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ २ ॥

(यजुर्वेद-तैत्ति० २।१।१)

ॐ वह प्रसिद्ध परमेश्वर हम शिष्य और आचार्य दोनोंकी रक्षा करे । वह प्रसिद्ध परमेश्वर हम दोनोंको विद्याके फलका भोग करावे । हम दोनों मिलकर वीर्य यानी विद्याकी प्राप्तिके लिये सामर्थ्य प्राप्त करें । हम दोनोंका पढ़ा हुआ तेजस्वी होवे, हम दोनों परस्पर विद्वेष न करें । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः। छन्दोभ्योऽध्यमृतात्संबभूव। स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु। अमृतस्य देव धारणो भूयासम्। शरीरं मे विचर्षणम्। जिह्वा मे मधुमत्तमा। कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम्। ब्राह्मणः कोशोऽसि मेधया पिहितः। श्रुतं मे गोपाय॥ ॐ शान्तिः शान्ति शान्तिः॥ ३॥

(यजुर्वेद-तैत्ति० १।४।१)

ॐ जो ॐकार वैदिक-छन्दोंमें श्रेष्ठ है, सर्वरूप है, अमृत-वेदोंसे अधिक (आराधनीय) हुआ है। वह ॐकाररूप इन्द्र भगवान् मुझको बुद्धिकी सूक्ष्मता एकाग्रता एवं निर्मलतारूपी सामर्थ्य देवे। हे देव! मैं अमृत (परब्रह्म) का धारण करनेवाला होऊँ। मेरा शरीर रोग-रहित स्वस्थ रहे। मेरी जिह्वा मधुरभाषिणी हो, कानों से मैं वहुत सुनूँ। आप (ॐकार) ब्रह्मके कोश हैं यानी आपकी आराधनासे ही ब्रह्म प्रकट होता है, इसलिये आपके भीतर ब्रह्म छिपा है। लौकिक बुद्धिसे आप ढके हुए हैं। जो कुछ मैंने सुना है, उसकी रक्षा कीजिये। ॐशान्तिः शान्तिः शान्ति॥

ॐ अहं वृक्षस्य रेरिव। कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव। ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमतमस्मि। द्रविणं सवर्चसम्। सुमेधा अमृतोऽक्षितः। इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम्॥ ॐशान्तिः शान्तिः शान्तिः॥४॥

(ययुर्वेद तैत्ति० १।१०।१)

ॐ मैं संसाररूप वृक्षका काटनेवाला हूँ। मेरी कीर्ति (महिमा) पर्वतके शिखरके समान अत्युन्नत है। मैं सूर्यके समान अत्यन्त पवित्र और शुद्ध अमृत हूँ। प्रकाश सहित बल हूँ। सुन्दर-विशुद्ध बुद्धिवाला, अमृत और नाशरहित हूँ। ये वचन, वेदके जाननेके पश्चात् त्रिशङ्कुके कहे हुए हैं। ॐशान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐशान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ५ ॥

(यजुर्वेद ईश० बृहदारण्यक)

ॐ वह पूर्ण है, यह पूर्ण है, पूर्णसे पूर्ण निकलता है, पूर्णसे पूर्ण लेकर पूण ही परिशिष्ट रहता है। ॐशातिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च। सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकणं मे अस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ६ ॥

(सामवेद केन-छान्दोग्य)

ॐ मेरे अंग वाणी, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, बल और सर्व इन्द्रियाँ वृद्धिको प्राप्त हों। सब ब्रह्मरूप उपनिषद् हैं। मैं ब्रह्मका तिरस्कार

न करूँ, यानी ब्रह्मसे मैं विमुख न होऊँ । ब्रह्म मेरा तिरस्कार न करे, यानी हम दोनोंका परस्पर विशुद्ध प्रेम हो । ब्रह्मात्मामें निरन्तर प्रेम करनेवाले महापुरुषोंमें एवं उपनिषदों (वेदान्तों) में प्रख्यात जो शम दमादि धर्म हैं, वे मुझमें होवें । ॐशान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता, मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि । वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रात्संदधाम्यृतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु । अवतु माम् । अवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ७ ॥

(ऋग्वेद ऐतरेय)

मेरी वाणी मनमें प्रतिष्ठित हो, मेरा मन वाणीमें प्रतिष्ठित हो। हे स्वप्रकाश प्रकाश ब्रह्म चैतन्यात्मन् ! अविद्या दूर करनेके लिये आप मुझमें प्रकट हो जाइये । वेदका यथार्थ तत्त्व मेरे लिये लाइये । मेरा सुना हुआ मुझे न छोड़े । इस पढ़े हुएको मैं दिन-रात धारण करूँ । परमार्थमें सत्य बोलूँ, व्यवहारमें भी सत्य बोलूँ । वह ब्रह्म मेरी रक्षा करे, वह आचार्यकी रक्षा करे, रक्षा करे मेरी । रक्षा करे आचार्यकी, रक्षा करे आचार्यकी । ॐशान्तिः शान्तिः शान्ति ॥

ॐभद्रं नो अपिवातय मनः ॥ ॐ शान्तिः शान्तिःशान्तिः ॥८॥

ॐ हमारा कल्याण हो, मन पवित्र कीजिये। ॐशान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः। स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः। स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदा। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः। स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ९ ॥

(अथर्ववेद प्रश्न०)

हे देवो! हम कानोंसे कल्याणमय वचन सुनें। ध्यान करनेवाले हम नेत्रोंसे कल्याणरूप देखें। स्थिर, हस्तपादादि अङ्गोंके द्वारा सूक्ष्म रहस्यवाली श्रुतियोंसे उस परब्रह्म-परमात्माकी स्तुति करें। हे देवो! आयुभर हम कल्याणरूप शिवको ही धारण करें। महान् कीर्तिवाला इन्द्र हमको आनन्द देवे। समस्त विश्वका जाननेवाला सूर्य हमको आनन्द देवे। अप्रतिहतगतिवाला गरुड़ हमको आनन्द देवे। बृहस्पति हमको आनन्द देवे। ॐशान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १० ॥

(यजुर्वेद श्वेता० ६।१८)

ॐ जो परब्रह्म परमात्मा पूर्वमें ही आद्यशरीरी ब्रह्माको धारण करता है। और जो उसके लिये वेदोंको प्रकाशित करता है। आत्म-बुद्धिके प्रकाशक उस प्रसिद्ध देवकी शरणमें मैं मुमुक्षु जाता हूँ। ॐशान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ इति वैदिक शान्तिपाठ ॥
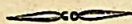
ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और धार्मिक सिद्धान्तोंका अध्ययन करनेके लिए सचित्र मासिक-विश्वनाथके ग्राहक बनें। विश्वनाथका वार्षिक मूल्य ३) रु० और एक प्रतिका दाम ।-) आना है। सार्वजनिक संस्था तथा छात्रोंके लिए २) रु०। विशेष जानकारीके लिए पत्र व्यवहार करें।

पता—विश्वनाथ-पत्र कार्यालय
ढुण्ढिराज गणेश, काशी।